

BIBLIOTHECA INDICA.

COLLECTION OF ORIENTAL

PROF. K. V. RANGASWAMI

PUBLISHED BY

ASIATIC SOCIETY OF BENGAL

NEW SERIES, No. 1462.

PRTHVĪRĀJA VIJAYA,

A SANSKRIT EPIC WITH THE COMMENTARY OF
JONARAJA.



BY

S. K. BELVARKAR, M.A., Ph.D.

FASC. I.

CALCUTTA:

PRINTED AT THE EAST INDIA MISSION PRESS.

AND PUBLISHED BY THE

ASIATIC SOCIETY, 1, PARK STREET.

1914.

AND OBTAINABLE FROM

MR. QUAILTON, 11, Grafton Street, New Bond Street, London, W.
O. HARRASSOWITZ, Bookseller, Leipzig, Germany.

Copies of those works marked with an asterisk * cannot be supplied.

of the Facsimile being out of stock.

BIBLIOTHECA INDICA

Sanskrit Series.

| | |
|--|-------|
| Aivaitachintā, Kaustubha, Fasc. 1-3 @ 10/ each | Rs. 1 |
| Aitārēya Brāhmaṇa, Vol. I, Fasc. 1-5; Vol. II, Fasc. 1-5; Vol. III, Fasc. 1-5; Vol. IV, Fasc. 1-5 @ 10/ each | 15 |
| Aitareyaopaniṣad | 2 |
| Amarakośa, Fasc. 1-2 | 4 |
| Anpmana Dīkṣitī Prasārini, Fasc. 1-3 @ 10/ | 1 |
| Āpāṇśāstrīka Prajñāpāramitā, Fasc. 1-6 @ 10/ each | 8 |
| Āpātāktavivēka, Fasc. 1 | 0 |
| Āgavaidyaka, Fasc. 1-5 @ 10/ each | 3 |
| Arāṇyaka Kāpātātā, (Sāns. and Gitān) Vol. I, Fasc. 1-11. Vol. II, Fasc. 1-11 @ 1/ each | 22 |
| Bāḥm Bhāṭṭī, Vol. I, Fasc. 1-2; Vol. II, Fasc. 1, @ 10/ each | 1 |
| Baudhāyana Śrauta Sūtra, Vol. I, Fasc. 1-3; Vol. II, Fasc. 1-5; Vol. III, Fasc. 1, @ 10/ each | 6 |
| Bhāṣārīty | 6 |
| Bhāṭṭa Dīpikā, Vol. I, Fasc. 1-3; Vol. II, Fasc. 1-2 @ 10/ each | 5 |
| Bandhaśāstrasamgraha | 2 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-4 @ 10/ each | 2 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-5 @ 10/ each | 3 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-6 @ 10/ each | 3 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-7 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-8 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-9 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-10 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-11 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-12 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-13 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-14 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-15 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-16 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-17 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-18 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-19 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-20 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-21 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-22 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-23 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-24 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-25 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-26 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-27 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-28 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-29 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-30 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-31 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-32 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-33 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-34 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-35 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-36 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-37 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-38 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-39 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-40 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-41 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-42 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-43 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-44 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-45 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-46 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-47 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-48 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-49 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-50 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-51 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-52 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-53 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-54 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-55 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-56 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-57 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-58 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-59 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-60 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-61 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-62 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-63 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-64 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-65 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-66 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-67 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-68 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-69 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-70 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-71 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-72 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-73 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-74 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-75 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-76 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-77 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-78 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-79 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-80 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-81 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-82 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-83 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-84 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-85 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-86 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-87 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-88 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-89 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-90 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-91 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-92 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-93 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-94 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-95 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-96 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-97 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-98 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-99 @ 10/ each | 1 |
| Bṛhaddeśikā, Fasc. 1-100 @ 10/ each | 1 |

अथ

जोनराजकृतटीकासहितं पृथ्वीराज- विजयाख्यं महाकाव्यम् ॥

प्रथमः सर्गः ।

न्ता प्रीतिः वेता विश्वान्तरवर्तिनी भावा — — स्फुटदृग्-
कविप्रवर्त्ता — — — नमं तस्य पर्युदासं सदृशमित्यर्थः । कैलास-
ह्यापि स्फटिकमयत्वेन वस्तुसंक्रान्तः ए — — — न सुख-
दायिनमाश्रित्य वनजभानन्देश्वरं प्रपद्येऽहं शरणीकरोम्यहम् ॥

ऊनेन - - - तये - - -

- - - ज्ञाधिकतापराधम् ।

न ब्रह्मचर्येण न सः सः सः

सदाशिवः पञ्चमुखसदाशिवः ॥

10 पञ्चमुखसदाशिवस्तस्य — ए — — — दश

नेत्राणि भवन्ति । पञ्चमुखस्तु दादयः । अत ईश्वरनेत्रे कुमा

* The first two leaves are missing, covering the first half a dozen verses or so.

----- स्वात् ददामीत् षण्मुखस्यैव
 मुखमधिकं भवति : तेन ----- धत्तं शोधयन्निव कुमा
 ----- शान् ॥

अचुम्बितार्थप्रति(भान*)भानु-
 ६ वल्लीकजन्मा कवितावता - ।
 ----- प्रबबन्ध पूर्व-
 मनन्तरं दाशरथिर्जजृम्भे ॥

अनुम्बि ----- एतानामुल्लिखितानामर्थानामभि
 धेयानां संख्यां च प्रतिभाते प्रकाशने वल्लीकिर्युष्मान्चेत् ।
 10 तमेवांशे प्रकाशयितुं वाल्मीकिं ----- द्वयो
 रामेतद्विषयमेव रामवरितं प्रबद्धवान् पश्चाद्रामोऽसुरत्

----- नन्तु चिदिर्व पुराण
 द्वौषोदधिं वेदसमुद्रमधम् ।
 नभस्तलं व्याकरणप्रहाणां
 15 काव्यं व्यध ----- बोध्यात् ॥

दशकान्येव पठ्यन्त्यात्वादृतदंशं ----- चिदिं स्वर्गं विरुद्धा-
 नामपि तेषामेकत्र निवासतः । पुराणान्येवाष्टादशसंख्य -----
 ----- सुदधिम । तेषां तद्वर्तित्वात् । व्याकरणाभ्यामेव
 नवसंख्यत्वाद्वास्तूर्यादयस्तेषामाकाशं । तेषां तदेक -----

त्वात् । वेदा एव समुद्राश्च चतुस्तंख्यत्वात्तेषां मेघं वर्धकं यो
महाभारताख्यं काव्यमकरोत् स व्यासो वो रक्षेत् ॥

असत्य*

----- |

----- ॥

10 ----- |

----- ॥

रयत् । अन्तर्भावित्पर्यात्र करोतिः । वेदवत्सत्यं रामायणं
15 चकारेत्यर्थः । त्रिसंख्यत्वाच्च त्रय्यनुकरणम् । अतोऽस्माद्धेतो-
र्द्वितीयो मुनीन्द्रो व्यासः पुराणानां समसंख्यैरष्टादशभिः पर्वभिः
स्वकाव्यं पुराणजातमन्वचौकरत् । पुराणवत्सत्यं महाभारत-
मित्यर्थः । पर्वभिरिति 'हृक्कोरन्यतरस्याम्' इति तृतीया ॥

सत्काव्यसंहारविधौ खलानां

20

दौप्तानि वह्नेरपि मानसानि ।

* A large lacuna in consequence of the peeling off of the lower part of fol. 3a.

भासस्य काव्यं खलु विष्णुधर्मात् सोष्याननात्पारतवन्मुमोच ॥

सतां काव्यं तद्विषये संहारविधौ दाहे दोषारोपणेऽग्रेरपि
सकाशादुर्जनानां चित्तानि दीप्तान्यजस्तानि(णि) भवन्ति । अत्र
5 साधनमाह । मोऽग्निरपि भासमुनेः काव्यं विष्णुधर्मान्मुखात्प्रक-
वान् । नादहदित्यर्थः । अत एव पारतवदित्युपमा । अग्निर्हि
वस्त्वन्तरवत्पारतं दग्धुमशक्तो मुखान्मुञ्चति । भासव्यासयोः
काव्यविषये स्पर्धां कुर्वतोस्सर्वोत्कर्षवर्तित्वेन परीक्षकान्तरा-
भावात् परीक्षार्थमग्निमध्ये तयोर्द्वयोः काव्यद्वयं क्षिप्तम् । तयो-
10 र्मध्यादग्निर्विष्णुधर्मान्नादहदिति प्रसिद्धिः । खलैस्तु प्राप्तं सत्काव्यं
दह्यते । इत्यग्रेस्सकाशात् खलानां दाहकत्वमित्यर्थः ॥

मध्येबुधं ये कवयो भवन्ति
बुधाः कवीनामपि सन्निधाने ।
सर्वज्ञता मूर्खसभा(सु तेषां*)
15 लभ्येत विद्वत्कविगालिदानैः ॥

पण्डितमध्ये ये कविभावमेव नाटयन्ति तथा कविसन्निधौ
पण्डितत्वं चाभिनयन्ति तेषां मूर्खसभासु सर्वज्ञता† लभ्येत ।
अत्र हेतुः । विद्वांसश्च ते कवयश्च तेषां गालिदानैराक्रोश-

* Supplied from the Com

† कवित्वं विद्वत्त्वं च । (note in the MS.)

कथनैः विद्वत्कविविषया गालीश्रुत्वा ते स्वात्मानं नियतगुणं
प्रकाशयन्ति । मूर्खसमाख्यति विद्वत्समासु गालिदानं विनैव तेषां
नियतगुणत्वप्रकाशनार्थम् । विद्वत्वं कवित्वं चैकत्र न संभवतीति
—तम् । अथवा विदुषां कविनां मध्ये — — — — —

5 — — तस्तेषां पण्डि-(v. l. कवि-)तत्त्वाभावः प्रकटो भवति ॥

विधानकुम्भानिव भू - - -

- - - मुत्साद्य कवीन्विधाता ।

राज्ञां विना पुण्यबलं करोति

तिरोहितान्मत्सरिकृष्णसर्पैः ॥

10 भूमौ राज्ञां पुण्यं विना पुण्यरहितानां राज्ञामयं खलः
कवीन्तिरोहितान्करोति च्छादयति । किं कृत्वा । मत्सरिण
एव कृष्णसर्पैरुत्साद्य मत्सरिणश्चोदयित्वेत्यर्थः । यथा विधाता
निधीन् कृष्णसर्पैरुत्साद्य तिरोधत्ते विना पुण्यबलम् । अयमिति
प्रत्यक्षनिर्देशः । खलस्य कवितिरस्कारे स्वात्मप्रच्छादनाभावार्थः ॥

15 विद्वान्कवेर्यौ विहितानुकारः

- - - - च्छादयितुं यतेत ।

वैरायमाणैस्स वराङ्गनाभ्य-

स्सख्यं न किं वर्षवरैः करोति ॥

कवि — — — — — पण्डितत्वं

20 गोपयति स वराङ्गनाभो वैरं संघर्षं कुर्वद्भिर्वर्षवरैः शठैस्सख्यं

बोध्यः । अत्र दृष्टान्तमाह । पेयलेनोद्धृतानां प — — — ला
— — शो — — — — चिप्यते । पातयं जलं भस्मना चिप्येन
यथा त्याज्यतामेव प्राप्नोति तथा मरुमपि काव्यं पण्डितोप-
न्यस्तेनोपकारे — — — — — ॥

5 परीक्षकाणां रुचिमाकलय्य
प्रकाशनीयः कविना प्रकर्षः ।
असात्विका - - - - -
- - - (भि)षजा न योज्यः ॥

परीक्षकाणां बुद्धिं विचार्य कविना निजो द्र - - - - -
10 - (रयस्ताः काव्यं न प्रकाशनीयमिति*) निस्तृत्वां प्रकृतिं दृष्ट्वा
तौक्ष्ण्योपशमो वैद्येन न प्रयोज्यः । अद्यतनानां रुचिः प्रतीति-
लभेष्वर्येषु नास्तीति मया ते नैवोपन्यस्ता इति सूचितम् ॥

न पण्डितानां कविरित्यसाध्यः
कर्णज्वरोयं यदि शाश्वतस्स्यात् ।
15 स्युरेव विद्यामधिकृत्य दूतीं
तन्मोक्षलक्ष्मीपरिरम्भयोग्याः ॥

अयं कविरस्तीति पण्डितानामसाध्यः कर्णज्वरो नित्यो
यदि न भवेत्तद्विद्यामेव दूतीमधिकृत्य मोक्षलक्ष्म्याः परिरम्भे

* This part of the Com. is thus placed within brackets in the original MS.

योग्यास्ते भवेयुः । विद्यावन्तोऽपि कवौ मत्सरान्मोचं न लभन्ते
इति तात्पर्यम् । येषां चासाध्यः साधयितुमशक्यो ज्वरस्ते
दूतीमुखेनाङ्गनां न प्रबोधयन्ति ॥

ज्वलन्ति चेद्दुर्जनसूर्यकान्ताः
किं कुर्वते सत्कविसूर्यभासाम् ।
महीभृतां दोग्निशिखरेनुरूढां
पार्श्वस्थितां कीर्तिलतां दहन्ति ॥

दुर्जनाश्च ते सूर्यकान्ताः । सूररीणां विबुधानामकान्ता
अरञ्चकाः । पण्डितद्विषां कवीनां दोषारोपणे सामर्थ्या-
10 भावात् । ते काव्यं श्रुत्वा यज्ज्वलन्ति तन्महाकविरविरुषां किं
कुर्वन्ति । कवीनां कीर्तिं हन्तुं न शक्नुवन्तीत्यर्थः । महीभृतां
राज्ञां गैलानां च भुजशिखरे जातां कीर्तिमेव लतां
निकटस्थितास्ते दहन्ति । दुर्जनसन्निधानात् कवयो राज्ञो न
सुवन्तीति तात्पर्यम् । सूर्यकान्तोपलाश्च ज्वलन्तः सूर्यांश्च
15 स्वपथन्ति किन्तु पर्वतानां पुनर्लता दहन्ति ॥

मात्सर्यगर्भोत्कटसूरिसर्प
व्याजिह्मताचापलदूषितापि ।
कवीन्द्रवाक्चन्दनकन्दलीयं
स्वाभाविकं मुंचति नाधिवासम् ॥

20 मात्सर्यगर्भोत्कटसूरि एव सर्पसौख्याजिह्मता

चापलाभ्यां दूषितापि सती कविराजोक्तिचन्दनलता स्वाभा-
विकं सौगन्ध्यं न त्यजति । खलाः काव्यं दूषयितुं न शक्ता
इत्यर्थः ॥

निवेद्यते सण्म (नम !) णिदर्पणानां
5 तेनैव सार्वः परिशुद्धभावः ।
विभाव्यते तेषु यदात्मसंस्थ-
मसज्जनैर्दोषमयत्वमेवः ॥

असज्जनैः स्वकीयं दोषमयत्वमेव तेषु सज्जनेषु यदिभाव्यते
दृश्यते । दुर्जनाः सज्जनान् दोषमयान् पश्यन्तीत्यर्थः । तेन
10 सज्जनविषयदोषमयत्वदर्शनेनैव सतां मणिदर्पणानामिव सर्व-
हितं शुद्धत्वं प्रतिपाद्यते । शुद्धे दर्पणे ह्यात्मनिष्ठं वस्तु दृश्यते ।
अयमर्थः । दुर्जनाः स्वं दोषं सत्सु यत्पश्यन्ति । 'अस्मान् एते
भाव्यन्ते' इति यच्छब्दज्ज्ञे इत्यर्थः । तेनैव सतां शुद्धता प्रक-
टिता भवति । शुद्ध एव ह्यशुद्धस्य विरुद्धः ॥

15 गुणेषु लौल्यं मुजनस्य या-

----- ।

ततोऽधिकं - - - - - ते ॥

सतो — — — — — रिमाणं लौल्यं श्रद्धा तत्परिमाणं

खलस्य लौल्यं दोषविषये भवति । — — — तात्पर्यम् । सूर्यो
हि यावत्प्रकाशयति ततोऽधिकं तमस्तिरस्करोति ॥

दोषं गुणं वा पुरुषः परस्थं
यथा पिधाय स्वगतं पिधत्ते ।
कामं प्रकाश्यापि परस्थितं तं
प्रकाशयत्यात्मगतं तथैव ॥

परस्थं दोषं गुणं वा पिधाय च्छादयित्वा पुरुषस्तं स्वगतं
पिधत्ते यथा तथा परस्थितं तं दोषं गुणं वा प्रकटीकृत्य
स्वात्मनोऽपि तं प्रकटयति । अयमर्थः । परनिन्दया श्रोतारः

10 खलं कलयन्ति तस्यास्तु च्छादनेन सज्जनम् । परगुणस्तुत्या
सज्जनम् ॥

वाग्देवतागर्भगृहस्य विद्या-
स्थानेषु सोपानतया स्थितेषु ।
साहित्यविद्यापरिचारिकेय-
15 मनन्वयं नाम रजः प्रमार्ष्टि ॥

सरस्वतीगर्भावासस्य सोपानभूतेषु चतुर्दशसु विद्यासु
स्थानेष्वियं साहित्यविद्यैव परिचारिकाऽनन्वयं सम्बधविभूत्रण-
मेव रजः प्रमार्ष्टि । उद्भ्रंशयति । साहित्यावगमेन विद्या-
स्थानेषु प्रवेशः कर्तुं शक्यते इति साहित्येष्वादरः कर्तव्य

20 इत्यनेन निजोद्यमस्य सफलतां सूचयति कविः ॥

साधुः प्रमादात्त्यजति स्वभावं ,
 खलस्तु नारोहति साधुभावम् ।
 निर्गन्धतामेति हि चन्दनादि
 न सौरभं संघटते रसोने ॥

- 5 'प्रमादो न वजानते'त्यमरः । ततो हेतोस्साधुस्स्वभावं
 त्यजति । साधुत्वात्पततीत्यर्थः । खलः साधुत्वं नाधिरोहति ।
 जलादिद्रव्यसंसर्गेण चन्दनादि गन्धरहितं भवति लक्ष्मणे पुनः
 सौगन्ध्यं न संक्रामति ॥

- 10 मागाद्विवं दुर्मतिराप्तविद्यो
 न वेद कर्तव्यमिहापि लोके ।
 खमुत्पतन्मा तिमयः सपथ्याः
 स्थलेऽपि जानन्ति न जातु यातुम् ॥

- विद्याप्राप्त्या स्वर्गप्राप्तिरित्यागमः । प्राप्तविद्यः खलः स्वर्गं
 माधिरूचदस्मिंस्लोकेऽपि कर्तव्यं न जानाति । मात्सर्याद्दुर्मति-
 15 लोकाद्वयाद्भ्रष्ट एवेत्यर्थः । दृष्टान्तमाह । सपत्न्यादुचितमप्या-
 काशगमनं मत्स्या मा प्रापन् यावत्स्थलेऽपि ते नैव प्रक्रमन्ते ।
 — — — (पक्षाः ?) विद्यास्थानीयाः । द्यावापृथ्व्यौ लोक-
 द्वयस्थानीये । उत्पतन्निति पतेर्लुटि पप्यादेशाभाव — — —
 — — — ॥

मानं खलो यल्लभतेऽन्यतोऽपि ।
तत्पादहीनोऽपि फणी जवेन
जले स्थलादभ्यधिकं प्रयाति ॥

- 5 अन्यस्थानादपि विशिष्टं मानं निर्गुणोऽपि खलो राजकुले
यल्लभते । राजानः खलमधिकं यन्मानयन्तीत्यर्थः । तत्क —
— इदं भवतीत्यध्याहर्तव्यम् । तेन वाक्यार्थरूपकमिदम् ।
इदं किमित्याह । पादरहितोऽपि सर्पः स्थलादधिकं जले —
— ति यत् । निर्विद्यस्यापि यत्सर्वत्र मानलाभस्तन्निष्पाद-
10 स्यापि सर्पस्य जलस्थलयोस्मानगमनम् ॥

कवीरवाप्यापि मनोज्ञ - - -
(न्रा*)जा न यः पाति कुपण्डितेभ्यः ।
उपेक्षते केलि (शुका*)नव(ध्यान्
क्रीडा*)बिडालैर्भवि हन्यमानान् ॥

- 15 यो राजा सरसकाव्यानपि कवींखलेभ्यो न रक्षति स
क्रीडाबिडालैर्मर्यामाणक्रीडाशुकानवलिम्यति । खलैरवमानि-
तानां कवीनामरक्षणं यत्तद्विडालमार्थमाणशुकावलेप इति
वाक्यार्थरूपकम् ॥

दिक्पालतेजोमयमूर्तिभाजां
 कवीन् जिघांसन्ति बुधाः पुरो यत् ।
 राज्ञामिदं तद्वरुणोपदिष्टं
 मात्स्यं प्रति न्यायमुपेक्षकत्वम् ॥

- 5 पण्डिता राज्ञामग्रे कवीन्बद्धन्तुमिच्छन्ति तदिदमुपेक्षकत्वं
 कविरक्षणावलेपो राज्ञां भवति । अत्र हेतुमाह । मात्स्यं न्यायं
 प्रतीति । मात्स्येन न्यायेनेत्यर्थः । महान्मात्स्यः सूक्ष्मं मात्स्यं
 गिलतीति मात्स्यो न्यायः । मात्स्ये न्याये कुतूस्तेषां शक्ति-
 रित्याह । दिक्पालानामिन्द्रादीनामष्टानां लोकपालानां तेजो
 10 भजताम् । यदि राजानस्तथाविधास्तन्मात्स्यो न्यायः कथं तेभ्यो
 रोचते इत्याह । वरुणोपदिष्टमिति । राज्ञां हि वरुणांशो-
 ऽप्यस्ति । वरुणश्चापां पतिः । तृतीयार्थं इति प्रतिः कर्मप्रवच-
 नीयः । अपेक्षकत्वमिति वा पाठः । तदिदं बुधैः कवीनां हननं
 कर्तुं । वरुणोपदिष्टमपेक्षकत्वं भवतीति योजनीयम्) — — ।
 15 — — — प्रवचनीयैश्चेति द्वितीया । अल्पज्ञा एव कवीन्निन्द-

दृष्ट्वा कविं कृष्णमुखैर्मुधान्यै-
 रसूयया किं विबुधैर्विधेयम् ।
 यो विश्वरूपो विबुधेषु धुर्य-
 20 स्स एव हेतुर्हि कविप्रथायाः ॥

कविं दृष्ट्वा मृषानुचिन्तयाऽसूयया मत्सरेण कालमुखैः

पण्डितैर्विश्वरूपादन्यैः किं कार्यम् । यदा कृष्णनामा आजय-
मेरवः पण्डितस्तदादिभिः पण्डितैर्मिथ्या मत्सरेण किं संपा-
द्यम् । आजयमेरवो यः पण्डितराजो विश्वरूपनामा स एव
कविरिति प्रथायाः कवीनां वा प्रथाया हेतुः । कविं शुक्रं
5 च दृष्ट्वा हरिप्रभृतिभिर्देवैर्मत्सरेण किं कार्यम् । विश्वरूपो
देवदेवो हि कविप्रसिद्धिहेतुः ॥

पण्डितानां स्तुतिद्वारेण निन्दामाह ।

संमानितैः क्षालयितुं कवीन्द्रैः

----- ।

10 ----- तेषा-

मृणस्य शुद्धौ विबुधास्त्वरन्ताम् ॥

क — — — — — राजानः कवीनामध-
मर्णा भवन्ति । संमानितैः संमाननैर्वृत्तिदानेन — — — — —
— — — — — णं शोधयितुं राज्ञामुचितम् । पण्डिता एव
15 राज्ञामृणशोधने स्वरन्ताम् । — — — — —
मित्याह । तेषां कवीनां काव्यविद्वेषस्तन्मुखेन । अयमर्थः ।
पण्डिता राजविषये कवीनां काव्यं द्विषन्ति । ततः कवयो
राज्ञां काव्यं न कुर्वन्ति । इति ऋणशुद्धिर्जाता । पण्डिता
राज्ञां नाममात्रमपि विस्मारयितुं प्रवृत्ता इत्यर्थः । यदा
20 राजभिर्दत्तवृत्तयः कवयो राज्ञामधमर्णा भवन्ति । पण्डिताः

कवीनां — — — — — षयित्वा कवीनामृणशृङ्खौ त्वरन्ताम् ।
 काव्ये दूषिते सति राजानः कवीनां वृत्तिं ह — — — — —
 — — — — — तेत्यर्थः ॥

5 कवेस्तत्त्वं कविरेव वेद
 न तद्विदस्तर्कवितर्कखिन्ना ।
 किं वेदितुं दोषगुणावभिज्ञ-
 स्तुरङ्गविद्यानिपुणस्य यन्ता ॥

कविरेव कवेः कौशल्यं जानाति तार्किकासु नात्र
 कुशलाः । अश्वविद्याचतुरस्य गुणदोषौ विप्रष्टुं यन्ता गजारोहः
 10 किमभिज्ञो भवति ॥

मत्सरिभिरनुपेक्षणीयमीश्वरविषयमेव काव्यं यतो न कृतं
 तत्प्रतिपादयितुमाह ।

गतस्पृहोप्यादिकविः प्रबन्धं
 बबन्ध रामस्य भविष्यतोऽपि ।
 15 संमान्यमानस्तु नरेश्वरेण
 मादृक्कथं काव्यविधावुदास्ताम् ॥

रामभद्रस्य जन्मनः प्रागेव रामायणं निसृष्टोऽपि वाल्मीकिः
 कृतवान् । मादृक् सस्पृहस्तु राजादत्तवृत्तिश्चरित्रवर्णने काव्ये
 कथमुदासीनो भवेत् । संमान्यमान इति मनेर्णिजन्ताल्लटश्च-
 20 त्प्रशानचाविति कर्मणि शानच् ॥

मयि प्रवृत्ते हिमसोदराणि
यैशांसि विस्तारयितुं नृपस्य ।
प्रजाज्वलीतु प्रतिपक्षराज-
न्यायेन सर्वोऽपि गणो बुधानाम् ॥

5 हिमसदृशानि राज्ञः पृथ्वीराजस्य यशांसि ख्यापयितुं
मयि प्रवृत्ते सति तदीयप्रतिपक्षा राजानः पण्डिताश्च
मत्सरेणात्यर्थं ज्वलन्तु । हिमेन ज्वलनमिति विरोधाभासः ॥

यदि पण्डिता मत्सरं कुर्वन्ति तर्हि तत्कायं कः
शृणोतीत्याह ।

10 नरेश्वराणामुपमानतायै
कवीश्वराणामपि वर्णनाय ।
जगाम यो राममयं शरीरं
श्रोता स एवास्तु हृदिस्थितो मे ॥

यो मे हृदिस्थितः पृथ्वीराजस्तु एव श्रोताऽस्तु यः
15 श्रीरामरूपतां गतवान् । किमर्थम् । राज्ञामुपमानार्थं कवीनां
च वर्णनार्थम् । यदि श्रीरामो नाजनिष्यत राज्ञामुपमानं को
भविष्यत्कं वा कवयो वर्णयिष्यन्तित्यर्थः । श्रीराम एव पृथ्वी-
राजरूपो जात इति वक्ष्यति ॥

स्ववंश्यभूपालयशःप्रताप
 पाण्डुत्वचण्डत्वविवर्धनाय ।
 यौ संघटेते प्रतिमासमध्ये
 तौ वा मम प्रेक्षकतां भजेताम् ॥

- 5 अथवा तौ मदीयकाव्यस्य परीचकतां श्रूयताम् यौ
 मासस्य सावनमासस्य मध्ये दर्शं दर्शं यौ संघटेते एकराशिस्थौ
 भवतः । अत्र फलोत्प्रेक्षा । निजवंशजातानां राज्ञां यशः प्रता-
 पयोः शुभ्रत्वतीव्रत्वयोर्वर्धनार्थमिव । अयमर्थः । स्ववंश्यपृथ्वीराज-
 प्रेम्णा मत्काव्यं श्रोयतः । भजेतामिति ————— ट् ॥

- 10 बाल्येऽपि लीलाजिततारकाणि
 गीर्वाणवाहिन्युपकारकाणि ।
 जयन्ति सोमेश्वरनन्दनस्य
 षष्ठां गिरां शक्तिमतो यशांसि ॥

- त्रिशक्तिसहितस्य सोमेश्वरनामराजात्मजस्य पृथ्वीराजस्य
 15 बाल्येऽपि यशांसि जयन्ति सर्वोत्कर्षेण वर्तन्ते । षष्ठां संस्कृता-
 दीनां षट्संख्यानां वाचां । भाषाषट्कज्ञस्येत्यर्थः । लीलया
 हेलया जिततारकाण्डुभ्योऽप्यतिशुभ्राण्येत्यर्थः । अत एव
 गंगाया उपकारकाणि । अतिशुभ्रत्वापादनात् । शक्तिमतः
 कुमारस्य च । तत्पक्षे तारकोऽसुरविशेषः । गीर्वाणानां वाहिनी

सेना । सोम उमासहित - - - श्वरस्तत्पुत्रस्य । षष्ठां गिरा-
मिति कुमारस्य षण्मुखत्वात् ॥

पुरा पुराणं पुरुषं प्रणम्य
कदाचिदाभोगितयोगनिद्राम् ।

5 व्यजिज्ञपन्नाभिसहस्रपद्म-
सिंहासनः प्राञ्जलिरञ्जयोनिः ॥

आभोगवती कृता भोगिताऽनुभूता योगनिद्रा येन तं
हरिं प्रणम्य पुरा कस्मिन्नपि काले नाभिपद्मसंविष्टः ब्रह्मा
कृताञ्जलिरेवं विज्ञप्तवान् ॥

10 यथा त्वदीये मम पुष्करेऽस्मिन्
स्थितस्य संतापलवोऽपि नास्ति ।
तथा क्षितौ पुष्कर एव तीर्थे
त्वया सनाथस्सुखितो वसामि ॥

अस्मिंस्तन्नाभिपद्मे वसतो मम यथा संतापलेशो नास्ति तथा
15 त्वया कृतसानाथो भूमावपि पुष्करे तीर्थे सुखेनाहं वसामि ॥

त्वं पुण्डरीकाक्ष इति प्रतीतो
विभर्षि नाभावपि पुण्डरीकम् ।
यत्तत्र नित्यं कृतसंनिधान-
स्त्रिपुष्करं पुण्यमतस्तदाहुः ॥

20 यत्त्वं पुण्डरीकाक्ष इति पुष्कराक्ष इति प्रसिद्धः । तथा त्वं

नाभौ पुण्डरीकं पुष्करं यस्त्वं धारयसि स एवंविधस्त्वं
तत्र प्रसिद्धे (पुष्करे?) यत्कृतसंनिधानो भवसि नूनं ततो
हेतोर्जनास्तत्पुष्करं त्रिपुष्करं कथयन्ति ॥

5 देवस्त्रिनेत्रोऽप्यजगन्धनामा
त्रिपुष्करे सन्निदधाति तस्मिन् ।
जगन्नयौपावनता प्रवृत्तं
त्रिस्रोतसो दर्पमिवापनेतुम् ॥

तत्र त्रिपुष्करेऽजगन्धनामा देवस्त्रिनिधानं करोति । अत्र
संभाव्यते । अहं त्रिभुवनं पवित्रौकरोमौति जातं गंगाया
10 दर्पं निवारयितुमिव ॥

सा यज्ञभूमिर्मम पूर्वमस्यां
कुण्डं चयं वह्निमयं यदासीत् ।
तदेव कालस्य विपर्ययेण
पयोमयीं मूर्त्तिमभिप्रपन्नम् ॥

15 यत्त्रिपुष्करतीर्थं सा मम यज्ञभूमिः पूर्वमभूत् । अस्यां
यज्ञभूमौ त्रयाणामग्रीनामाश्रयो यत्कुण्डचयं यदासीत्तदेव
संप्रति कालवशाज्जलमयं संपन्नम् । वह्निमयमिति तत्प्रचरे
मथट्

लोके त्वदीये यदि वा मदीये
माहेश्वरे वा न तथा रमन्ते ।
यथा त्रयाणामपि सन्निधाना-
दस्माकमस्मिन्नपवर्गकामाः ॥

5 तव मम महेश्वरस्य च संबन्धिनि भुवने मुक्तिकामा न
तथा तुष्यन्ति यथास्माकं त्रयाणां सन्निधानात्त्रिपुष्करे
तुष्यन्ति मुक्तिकामाः । अस्माद्भुवनादप्यधिकं तूर्णमेवात्र
मोक्षसिद्धिः ॥

10 कैलासशैलादपि निर्मलानि
क्षीरोदधेरप्यमृतं स्रवन्ति ।
(ममा!) लयाब्जादपि पुण्यगन्ध-
पद्मानि हि त्रीण्यपि पुष्कराणि ॥

देवत्रय्यास्त्रिपुष्करसंनिधाने हेतुमाह । कैलासक्षीरसमुद्र
नाभिपद्माधिकगुणानि त्रीणि पुष्कराणि हि भवन्ति ॥

15 ब्रह्मर्षिगेहेषु सुखं स्थिताया-
स्सरस्वतीनेत्रतया त्रिवेद्याः ।
शैता प्रमोदास्तुसरस्वयौ सा
स्वामिन्निहानेहसि तप्तमास्ते ॥

(ब्रह्मर्षी) णामाश्रमेषु सुखं वसन्त्या वेदत्रय्याः सरस्वती-

नेत्रभावेन तस्याः हर्षबाष्पसरस्त्वयौ शीतलस्वभावा हे स्वामिन्
संप्रति तप्तं संतापतयाऽऽस्ते स्थिता ॥

कलेर्बलात्पाशुपतास्त्रनौत्या

याते वृषे मांप्रतमैकपद्यम् ।

5

त्रिलोचनो वाहनदुस्थितत्वात्

त्रैलोक्ययात्राविमुखत्वमेति ॥

पाशुपतास्त्रवदद्य धर्मं कलिबलादेकपदे सम्यन्ने वृषवाहनो
भगवान् वृषस्य पददुस्थितत्वात्पादत्रयनाशात् त्रिभुवनयात्रा-
पराङ्मुखो भवति । प्रतीयमानोत्प्रेक्षेयम् ॥

10

त्वयापि कामं कलिकालरात्रौ

निद्राविधेयत्वमुपागतेन ।

केशान् घनान् गर्जितभौरुणेव

हित्वा स्थितं शान्ततया जिनत्वे ॥

त्वयापि सम्यति बुद्धावतारे गृहीते सति घनान् निवि-
15 डान् केशान् शिरोरुहान् कस्य जलस्थेशान् स्वामिनो हित्वा
विलुप्य शान्ततया स्थितम् । भावे क्रः । घनकेशवर्जने हेतु-
त्प्रेक्षामाह । गर्जिताङ्गौतेनेव । यतः कलिकाल एव तमो-
मयत्वाद्रात्रिस्तस्यां निद्रायत्तेन । निद्रायत्तानां हि महाञ्ज्
शब्द उद्वेगकरः ॥

कलावमुष्मिन्विरतोद्यमेषु
 क्रतुक्रियायां द्विजमण्डलेषु ।
 भोगे हविर्भागमये समाप्ते
 जातो मृशं मन्दबलस्सुरेन्द्रः ॥

5 कलौ सति ब्राह्मणेषु यज्ञकर्मणि निवृत्तोद्योगेषु सत्सु
 हविर्भागेऽलब्धे सतीन्द्रोऽल्पबलस्सम्पन्नः ॥

इज्याभिघातादभिभूयते भूः
 कलावनावृष्टिमहाभयेन ।
 इत्युद्यमं पावकनन्दनस्य
 10 निषेधति क्षीणमदो मयूरः ॥

‘अग्नौ प्रास्ताहुतिस्सम्यग्’ इत्यादिस्मरणेन यज्ञाभावा-
 दनावृष्टिभयेन भूमिः परिभूयतेऽल्पफला क्रियते । तत इव
 निर्मदो मयूरः कुमारस्य लोकयात्रां निवर्तयति । मयूरा हि
 दिव्यजलजौवकाः ॥

15 उत्तेजितं रामतया कुलं य-
 दुद्धेजितं तद्भवता जिनत्वे ।
 इत्यन्वयं स्वं प्रतिसंदिहानो
 मन्दप्रभस्सूरिरिवाद्य सूर्यः ॥

श्रीरामरूपेण त्वया यत्कुलं शोभितं तदेव बुद्धरूपेण

सता त्वया क्षोभितमिति स्वर्गं ससन्देह इव रविरद्य मन्दप्रभो
जातः । यथा सूरिः पण्डितोन्वयं संबन्धं प्रतिसन्देहवान्
मन्दच्छायो भवति ॥

5 त्वया हरे तापसतामुपेत्य
सख्ये गृहीते हरिणैरिदानीम् ।
निवासभूमिर्मम पुष्करं त-
दास्कन्दि मातङ्गमहाभयेन ॥

हरिर्विष्णुसिंहश्च । हे हरे त्वया ऋषितामाश्रित्य मृगैः
सह निवासे गृहीते सति मत्स्थानं पुष्करं मातङ्गेभ्यो स्नेच्छेभ्यो
10 महाभयेनास्कन्दि आक्रान्तम् । सिंहे च शान्तप्राये सति
मातङ्गेभ्यो हस्तिभ्यो भयेन स्थानमास्कन्द्यते ॥

चक्रे जगत्सर्गमहाध्वरान्ते
मयापि यत्रावमृथाभिषेकः ।
तत्राधुना देवगृहाग्रहार-
15 हिंसाकृतं स्नेच्छचमूशिच्छनन्ति ॥

जगत्सर्ग एव महाध्वरस्तत्समाप्तौ यत्र स्थानं मयापि अव-
मृतस्नानं कृतं । शुद्ध्यर्थमिति शेषः । तत्राधुना स्नेच्छाः प्रासा-
दादिध्वसेन खेदं निवारयन्ति । तथाविधे पुण्यायतने स्नेच्छाः
पापमाचरन्ति इत्यर्थः । अस्मत्कृतसर्गयज्ञसमाप्तावधिकारमलस्य
20 वारणार्थं योऽवमृथाभिषेको भवति सो - - - - - मया य - -

---- इत्यन्वयः । पुष्करसेवया ममाधिकारमलनिवृत्तिर्जाता
नलन्यत्र तपो -- दि -- वित्यर्थः ॥

तव प्रविष्टे प्रमदाश्रुधारे
प्राक्तत्र रेवायमुनास्वसारौ ।
5 वेविश्यतेऽवश्यमुपान्तभाजा-
मुच्छिष्टमप्यद्य जनङ्गमानाम् ॥

तवानन्दबाष्पधारे पूर्वं तत्र प्रविष्टे । पुष्करस्य पुण्यायतन-
त्वादानन्दोत्पत्तेरिति भावः । भगवतश्चन्द्रार्कनेत्रत्वाद्धर्षबाष्प-
धारे रेवायमुनयोः सोदर्यौ । रेवा यमुने हि चन्द्रार्काभ्या-
10 मुत्पन्ने । अद्य तु जनङ्गमानां स्नेच्छानां तत्समीपवर्तिना-
मुच्छिष्टमपि पुनः पुनः प्रविशति ॥

या स्नास्यदेकादशरुद्रमुण्ड
प्रणामकाले नयनाग्निनाभूत् ।
मातङ्गबन्दीकृतविप्रबाष्पैः
15 कोष्णाद्य सा पुष्करकूललेखा ॥

स्नास्यन्तो य एकादश रुद्रास्तत्कर्तृके मुण्डप्रणामे या
तन्नेत्राग्निना कोष्णाभूत् साद्य स्नेच्छावष्टब्धब्राह्मणाश्रुभिः
पुष्करतटभूमिः कोष्णा भवति ॥

तां यत्र तत्तन्निदिवेशवेश्यां
20 स्नातीं शचीं स्वर्गणिकागणः प्राक् ।

स्नानान्निषिद्धो निभृतं जहास
मज्जन्ति तत्राधमपुष्पवत्यः ॥

यत्र पुष्करे स्नातुं प्रवृत्तः स्वर्गवेश्यासमूहः पूर्वं शच्यैव
निषिद्धः । तासां वेश्यात्वेनाधमत्वादिति भावः । तत्र स्नातुं
5 प्रवृत्तां शचीं हसितवान् । अत्र हेतुः । तेषां तेषां त्रिदिवेशा-
नामिन्द्राणां वेश्यामुपभोग्याम् । तत्राधमानां स्नेच्छानां पुष्पवत्य
चतुस्नाताः स्त्रियः स्नान्ति । शचीगात्रस्पर्शनमात्रमपि यत्रानु-
चितं तत्र रजस्वलासुरुक्ष्यः स्नान्ति ॥

मरुप्रयाणक्लमखिन्नभिन्न-
10 स्ववाहकण्ठासृगनस्तटृष्णाः ।
पिबन्ति तानद्य पयांसि पापाः
सुधान्धसामाचमनोचितानि ॥

मरौ धावनजातेन कष्टेन खिन्ना अत एव भिन्नेभ्यः क्लत-
रक्त्वाहिनाडौव्यधेभ्यः स्ववाजिकण्ठेभ्योऽसृजा रक्तेनानस्ता
15 अनपेता तृष्णा येषां ते पापाः । सुधान्धसामसृताग्निनामपि
शोधनयोग्यानि, पेयानि वा, तानि जलानद्य पिबन्ति ॥

सप्तर्षयः कामदुघापयोभिः
प्रारेभिरे प्राक्परमान्नपाकम् ।
हृत्वाधुना जीवत एव मत्स्यान्-
20 पचन्ति पुण्ये पुलिने पुलिन्दाः ॥

कामधेनुचीरैर्हेतुभिः सत्यर्षयः पायसपाकं यत्र प्रारब्ध-
वन्तस्तत्राद्य तत्तटे पवित्रेपि मीनान्युद्धृत्य किराता जीवत
एव पचन्ति ॥

सुतः पुरस्ताद्भुवतानिमित्त-
5 मुत्तानपादस्य तपस्यति स्म ।
अवीचयः पुष्करतोद्य पापैः
पापैकनिष्ठैः सुगमौक्रियन्ते ॥

यत्रैवोत्तानपादपुत्रो ध्रुवतां प्राप्तुं तपः कृतवांस्तत्रैव पापैकनिष्ठैः
पापैस्तेच्छैरद्य पुष्करेऽवीचयो नरकविशेषाः सुलभाः क्रियन्ते ॥
10 इत आरभ्य दिशन्तीत्यन्तं (p. 32. l. 5) पुष्करस्तुतिकुलकम् ।

व्यधादहल्यागमनाघशुद्धिं
यतो निविश्याम्बुजनालवाले ।
इन्द्रोस्य तीर्थस्य ततः प्रभावा-
नेचाण्यवापाम्बुजसोदराणि ॥

15 अस्मिन्तीर्थे पद्मनालतन्तौ निवेशेन्द्रोऽहल्याभोगपापनिवृ-
त्तये तपो यद्ब्रुधात्तत इन्द्रोस्य तीर्थस्य प्रभावात्पद्मसमानि
नेत्राणि लेभे । गौतमशतपः शक्रः शरीरे रत्नदशशतीं
प्रापत् । अस्य तीर्थस्य प्रभावादत्र तपः कुर्वतः शक्रस्य
नेत्रसहस्रं संपन्नमिति श्रुतिः । संभावितादघशोधनादधिकस्य
20 रत्नाणां नेत्रौभावस्य संपत्तिरिति विशेषः ॥

सप्तर्षिदारान्प्रति दुर्विकल्पे
 तीर्थं कृशानोरघमर्षणं तत् ।
 यमेन यस्यां च पयस्तदीय-
 माचम्य पापं विनियम्यते स्म ॥

- 5 अग्नेः सप्तर्षिदारान् प्रत्यभिलाषोभूत् । ततः स्वभार्यां
 सप्तर्षिदाररूपं कारयित्वाऽरंस्तेति दुर्विकल्पे सति अग्नेस्तत्तीर्थ-
 मघमर्षणम् । तत एव पापशुद्धिर्जातित्यर्थः । यमस्य भगिन्या-
 मभिलाषोभूदिति यस्यां पापं यमेन तज्जलमाचम्य निवारितम् ॥

10 स्नात्वा जले तत्र दिगौश्वरत्वे
 योग्येन रक्षः पतिनापि जातम् ।
 क्षारेण किं वारिधिनेति वेद
 तदेव सर्वस्वमिति प्रचेताः ॥

- तत्रैव स्नात्वा महाराक्षसेनापि नैर्ऋतेन दिक्पालत्वे योग्येन
 जातम् । भावे ऋतः । क्षारेणाश्विना किं फलमित्यतो वरुणोपि
 15 तदेव तीर्थं सर्वस्वं जानाति । समुद्रादपीदं पवित्रमित्यर्थः ॥

तत्पावनं पावकतोपि मत्वा
 नभस्वता किङ्करता गृहीता ।
 मरुस्थलीभ्यो मृगतृष्णिकान्धो
 न तन्मृगस्तत्पलिनं जहाति ॥

वायुरग्नेः सखेति प्रसिद्धिः । अग्नोरपि सकाशात्पवित्रं तत्तीर्थं
मत्वा तस्य तीर्थस्य वायुना किङ्करता गृहीता । वायुर्दासवत्तत्र
वसतीत्यर्थः । मरुस्थलीभ्यो मृगद्विष्णिकयान्धस्तन्मृगः पुष्करतटं
न जहाति । इत्युत्प्रेक्षा । अंधश्चैकत्रैवावतिष्ठते ॥

5 तटात्तटं मन्द्रमटाद्यमानं
मत्वा ककुद्मन्तमुमापतेस्तत् ।
स्वार्थं च पुण्यं च विदन्नुपास्ते
धराधिपो लिप्सितजातरूपः ॥

हरस्य वृषभं तटान्तरेषु शनैः कुटिलतया भ्रमन्तं मत्वा स्वार्थं
10 च पुण्यं च तदुपासनेन मन्यमानो वैश्रवणस्तत्तीर्थं सेवते । यतो
लिप्सितानि लभ्युमिष्टानि जातरूपाणि जातमभिजातं च येन
सः । हरवृषस्य संचारेण जातरूपाणि जायन्ते इति प्रसिद्धिः ॥

रुद्रेषु मूर्धस्थसुरापगेषु
त्रिपुष्करे सन्निहितेषु जाने ।
15 चतुर्दशभ्यो भुवनेभ्य एव
पवित्रता संघटिता तदानीम् ॥

शिरस्थितगङ्गेच्छेकादशसु रुद्रेषु त्रिपुष्करतटकृतसंनिधानेषु
सत्सु अहं जाने भूमौ चतुर्दशभ्यो भुवनेभ्यः पवित्रता तत्र
राशीभूता । अन्यथा तत्रैव रुद्राः किं वसेयुः । एकादश रुद्राः
20 पुष्कराणि त्रीणि च चतुर्दश भवन्तीत्यर्थच्छाया ॥

तथा शिरोजातपदैर्न शम्भोः
 कामंडलव्यैर्न तथा ममापि ।
 अवेषि पाद्यैर्न निजैस्तथोर्वो
 यथा पवित्रामसि (? पि) पुष्करैस्तैः ॥

- 5 शम्भोः शिरसि जातपदैः स्थिरस्थितैः पुष्करैर्जलैर्गाङ्गै-
 रित्यर्थः । मम कामंडलव्यैः कमंडलुस्थितैर्गाङ्गैरित्यर्थः । त्वमपि
 भूमिं पवित्रां तथा निजैः पाद्यैः पुष्करैर्गाङ्गैर्न जानासि यथा
 तैस्त्रिपुष्करैर्जानासि । गङ्गातोपि पुष्करं पवित्रमित्यर्थः ।

पुष्करं करिहस्ताद्ये वाद्यभाण्डे सुखे जले ।

- 10 योन्नि खड्गफले पद्मे तीर्थौषधिविशेषयोः ॥ इत्यमरः ॥

तापत्रयं दर्शनतो दहन्ति
 मलत्रयं स्पर्शनतो नुदन्ति ।
 सन्ध्यात्रयं वन्दनतो जयन्ति
 स्रोतस्त्रयं विस्मरयन्ति गाङ्गम् ॥

- 15 अध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकरूपं तापत्रयं दर्शनेन
 त्रीणि पुष्कराणि दहन्ति । तथा एवमायीयकार्मरूपं मलत्रयं
 स्पर्शनेन निवारयन्ति । तथा (वन्दो) नेन सन्ध्यात्रयवन्दना-
 दधिकं फलं दिशन्ति । तथा त एव गङ्गां प्रवाहत्रितयं
 जयन्ति ॥ गर्भकुलकम् ॥

- 20 उपासते मां त्रिदिवस्पृशोपि
 यदर्थमेव त्रिदिशस्त्रिसन्ध्यम् ।

त्रिविक्रम चौणि पदानि विष्णो-
स्तवं प्रवृत्तानि यतस्त्रिलोक्याम् ॥

यदर्थं मोक्षप्राप्त्यर्थं स्वर्गस्थिता देवा अपि मां नित्य
सेवन्ते । तथा हे त्रिविक्रम, विष्णोर्विश्वव्यापकतां कुर्वतस्त्व
५ चौणि पदानि यतः प्रभावात्त्रिलोकव्यापौनि संपन्नानि ॥

अश्वस्त्रिशूलस्य शिखात्रयेपि
त्रिविष्टपं येन तृणाय मत्वा ।
त्रिशङ्कुदिङ्गायमुषां बभूव
पुराणि च चौणि तृणीचकार ॥

- 10 त्रिशूलस्य धारात्रये सत्यपि येनैव महिम्ना स्वर्गं तृणायैव
मत्वा । अयमर्थः । शक्त्युत्कर्षात्पुनरपि स्वर्गं प्र(?)सादयामी-
तौश्वरो मतवान् । धर्माधर्मविवेचकत्वेन स्वर्गस्य रक्षितार
त्रिशङ्कुदिशो दक्षिणाशया नाथं स्वामिनं धर्मराजमुषां
बभूव । स्वर्ग----- दाह्यतेऽतस्स्वर्गस्यापि दाहः प्रसज्यते ।
15 तस्यापि दाहोऽस्तु किं तेनेति त्रिपुराणि चाधाचीत् । उषां
बभूवेति गुणाभावश्चिन्त्यः ॥

किं भूयसा चीनुदयानवाप्य
शक्तौश्च सिद्धौश्च समेत्य तिस्रः ।
संगृह्य मित्रचितयं निगृह्या-
मित्रचितयं चोज्ज्वलितप्रयत्नाः ॥

चिकूटशैलावधि सिद्धयात्राः
 क्षमापास्त्रयं राजचतुष्टयानाम् ।
 त्रिधा त्रिखंडामपि मेदिनीं च
 जित्वा यदासादयितुं न योग्याः ॥
 5 दिशन्ति तत्रैष्यपि पुष्कराणि
 संदर्शनस्पर्शनसंनिधानैः ।
 युगत्रयीपर्यवसानकाले
 दुःखैस्त्रिभिः संप्रति दूषितानि ॥

भूयसा किं भवति । बह्वनोक्तेन किमित्यर्थः । आत्मोदया-
 10 दौस्त्रीनुदयान् प्रभुगत्यादीस्त्रिः ऋक्तीभूमिभिश्चादीस्त्रिः
 सिद्धीर्मित्रचितयं मित्र, मित्रमित्रा, ऽधिमित्राणि प्राप्य तथा
 रिपुं, रिपुमित्रं, रिपुमित्रमित्रं च जित्वा लब्धधर्मार्थकामाः ॥
 चिकूटाद्विपर्यन्तं जयन्तो राजानो राजचतुष्टयानां त्रयं
 द्वादशविधं राजचक्रं जित्वा तथा त्रिखंडां भुवं च जित्वा
 15 यत् प्राप्तुं न योग्याः ॥ तद्दर्शनादिभिर्ददानानि त्रिपुष्कराणि
 कलिकालेद्य त्रिभिर्दुःखैराध्यात्मिकादिभिर्दूषितानि ॥

प्राप्तं न दिङ्मागकरस्थितेन
 वाग्देवताश्रीकरवर्तिना वा
 संबधिना वार्षवसप्तकस्य
 20 यत्सप्तसप्तेरपि वर्त्मना वा ।

यद्वादनौयेन महानटस्य
 नान्यक्षणे नन्दिमुखैर्गणैर्वा ।
 यत्तिष्ठता वा तव नन्दकेस्मिन्
 मेघेऽसुरस्त्रीस्मितचन्द्रिकायाः ॥
 तीर्थेन तत् कस्य न पुष्कराक्ष
 त्रिधा युगेषु त्रिषु पुष्करेण ।
 बभूव चिन्तामणिकामधेनु-
 कल्पद्रुमप्राग्रहरेण साम्यम् ॥ तिलकम् ॥

- हे पुष्कराक्ष, दिङ्मागानां करस्थेन पुष्करेण, वाग्देवतायाः
 10 श्रियश्च करवर्तिना वा पुष्करेण पद्मेन, सप्तसमुद्राणां पुष्करेण
 जलेन, सप्तसप्ते रवेर्वत्सना पुष्करेणाकाशेन, ॥ महानटेश्वरस्य
 नायकाले नन्दिमुखैर्वादनौयेन पुष्करेण मुरजेन, तथा दैत्य-
 स्त्रीहामज्योत्स्नाया मेघे निवारके इत्यर्थः । तवाऽस्मिन्नन्दकाख्ये
 खड्गे तिष्ठता पुष्करेणाग्रेण च यन्न प्राप्तम् ॥ तत्रिषु युगेषु
 15 चिन्तारत्नादिभ्यः श्रेष्ठेन त्रिपुष्करेण साम्यं कस्य न बभूव ॥

स्वयं पयोधिं विरसं विदित्वा
 त्वं पुण्डरीकाक्ष तदध्यतिष्ठः ।
 शयालुतायास्तदयं न कालो
 दयालुता सा समयानुयाता ॥

- 20 हे पुण्डरीकाक्ष समुद्रं चारं मत्वेव त्वं स्वयमप्रार्थित एव
 तत्पुष्करमाश्रयेः । ततस्तव नायमवलेपावसरः । तव करुणोचिता ॥

उत्तिष्ठमाने त्वयि माननीय
 शंकास्पदं कस्य कलिर्वराकः ।
 न हि विलोकीभयभंजनार्थं
 तवोद्यमे द्वापरमप्यवैमि ॥

- ५ हे माननीय त्वय्युत्तिष्ठमाने गृहीतोद्यमे सति वराकः
 कलिर्युगं कलहश्च कस्य शंकास्थानं । न कश्चित्कलेः शंक्ते
 इत्यर्थः । अत्र हेतुः । त्रिजगद्भीतिहरणार्थं तवोद्योगे द्वापरं युगं
 संदेहं च न मन्ये । प्रतिमल्लाभावादितिभावः । यत्र द्वापराभाव
 स्तत्र कथं कलिरित्युक्तिसंगतिः ॥ संदेहद्वापरौ चाथेत्यमरः ॥

- १० व्याहृत्य वाक्यमिति पुष्करकारणेन
 तूष्णीमभूयत च पुष्करकारणेन ।
 आसर्गसंमतपिशाचजनार्दनस्य
 भास्वत्यपत्यत दृशा च जनार्दनस्य ॥

- पुष्करकारणेन पद्मजन्मना त्रिपुष्करहेतोर्वचनमुक्त्वा तूष्णीं
 १५ भूतं च जनार्दनस्य दृशा सूर्ये पतितं च । द्वौ चशब्दावेक-
 कालतां सूचयतः । यतः सर्गादारभ्य संमतं पिशाचजनाना-
 मर्दनं मारणं यस्य ॥

तत्कालं रविमण्डलात्पुनरिव त्वष्टुर्गताज्ञोचरम्
 दैत्यारेर्विषयीकृताद् रविमयेनैवेक्षणेनोदगात् ।

गाढाकृष्टनभोवरोहसमयन्यञ्चन्मुखाश्चावली-
वल्गाहि च्छुटितापतत्फणमणिज्योतिस्सपत्नं महः ॥

विष्णो रविमयेन नेत्रेण स्थानीकृतान्नारायणेन दक्षिण-
दृशावीक्षितादित्यर्थः । सूर्यमण्डलात्तदा तेज उदगान्निर्गतम् ।
5 अतस्संभाव्यते । विश्वकर्मणो गोचरमिव गतात् । विश्वकर्मणा
हि पूर्वं तक्षितात्सूर्यात्तेजः पतितम् । गाढमाकृष्टाच्च तेन नभसो-
वरोहसमये न्यञ्चन्मुखाया अश्वश्रेणेर्वल्गाभूता येऽहयस्तेभ्यस्छुटिता
अत एवापतन्तो ये फणमणयः तेषां तेजसः सपत्नं समम् ॥

आकालाग्नेः शिवान्तं प्रथममजनि यत्तद्विपर्यासवृत्त्या
10 संप्रत्याग्नेयलिङ्गं किमिदमवतरत्यन्यथेयत् क तेजः ।
इत्यन्तः कान्तिजातं कमलजकमलाकान्तमेलापवेला-
साक्षित्वेन स्थितानां किमपि दिविषदां विस्मयं
तद्वितेने ॥

तत्कान्तिजातं स तेजःपुञ्जो नभश्चराणामाश्चर्यमुदपादयत् ।
कदाचित्तैः कश्चित्तेजःपुञ्जो न दृष्ट इत्याह । कमलजो ब्रह्मा
15 कमलाकान्तो विष्णुस्तयोः संघटनदर्शिनाम् । यद्वा तयोः संघटनं
पश्यतामिति वस्तुधर्मः । इति हेतोः कालाग्नैरारभ्य शिवपर्यन्तं
पूर्वं यदजनि । विपर्यासवृत्त्या आकाशादधः प्रवृत्त्या तदाग्नेय-
लिङ्गमिदं किमवतरति । कि - - - तम् । अन्यथा यदीद-
माग्नेयलिङ्गं न भवति तदा इयत्तेजः क भवतीति भद्रम् ॥

श्रीलोलराजसुतपण्डितभट्टनोन-

राजात्मजो विवरणं व्यधिताद्यसर्गे ।

आज्ञामवाप्य विदुषां किल जोनराजः

पृथ्वीमहेन्द्रविजयाभिधकाव्यराजे ॥ १ ॥

इति पृथ्वीराजविजये प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः ॥



अथांशुभिः सूर्यमयस्य चक्षुषः
स सूर्यकान्तादिव सूर्यमण्डलात् ।
जवादवारोहदखण्डचण्डिमा
वसुन्धरासंमुखमर्चिषां चयः ॥ १ ॥

- 5 अथानन्तरं सूर्यसहितस्य नेत्रस्य रश्मिभिः करणभूतैः
इवातितीक्ष्णः सूर्यबिम्बाज्जवेन ज्वालापुञ्जो भुवमवतीर्णवान् ।
यथार्कांशुभिः सूर्यकान्तादवरोहति निष्कामति ॥ १ ॥

- किमाहुतीः काश्चन शातमन्यवौ-
निवेश्य बिम्बे द्युमणोर्हुताशनः ।
10 समिद्धमूर्तिः सुहृदाऽन्तरिक्षतो
निवृत्य भूयोप्यधितिष्ठति क्षितिम् ॥ २ ॥

- शातमन्यवौरिन्द्रार्थं प्रकल्पिताः काश्चनाहुतीः सूर्यबिम्बे
प्रापय्य । ‘अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठत’ इति
वाक्यार्थात् । सुहृदा वायुना समिद्धमूर्तिर्दीपितज्वालोद्यमग्निः
15 किमाकाशान्निवृत्य भूयोपि भूमिमवरोहति ॥ २ ॥

किमेष रत्नाकर एव मूर्तिमा-
ननेन किं वा प्रहितः स वाडवः ।

सुरापगातिप्रणयप्रकोपवत्-

पतङ्गकन्यानुनयार्थमागतः ॥ ३ ॥

अयं मूर्त्ता रत्नाकर एव किं भवति । तथाऽनेन नदीपतिना
गङ्गानुरागकुक्ष्यमुनानुनयार्थं विस्मृतः सन्नागतो वाडवः किं
५ भवति । पतङ्गकन्येति साभिप्रायम् ॥ ३ ॥

सुषुम्णनाम्नः किरणस्य चन्द्रमाः

प्रयाति यस्य प्रतिदर्शमर्थिताम् ।

तमेव सर्वं रविणा किमर्पितं

प्रदर्शयिष्यत्यमोषधीः प्रति ॥ ४ ॥

10 यस्य सुषुम्णनाम्नः किरणस्य प्रत्याभावास्थां चन्द्रो याचकत्व-
मेति तमेव सुषुम्णमशेषमोषधीः प्रत्यर्केण किं दत्तमयमोष-
धीपतिर्दर्शयिष्यति । संभावनायां लृट् ॥ ४ ॥

किमुत्तरस्यां दिशि वृद्धतेजसा

कृतोपचारो वसुभिर्विवस्वता ।

15 उपेत्य रंभाप्रणयाच्चिविष्टपं

व्रजत्यसावुत्तरदिक्पतेः सुतः ॥ ५ ॥

उत्तरदिक्पतेः सुतो नडकूबरो रम्भानुरागाद्विवमागत्य
किं व्यावर्त्तते । दीप्तत्वे हेतुमाह । वसुभिस्तेजोभिर्धनैश्च सूर्येण
कृतमानः । तस्य मानने हेतुमाह । उत्तरस्यां दिशि प्रवर्ध-
मानतेजसा ॥ ५ ॥

किमेष सत्यप्यमृतांशुसौहृदे
तिरंस्कृतश्चन्द्रकिरिटतेजसा ।
विरागतः सूचितमित्रसंग्रहो
जगज्जिगीषुर्मदनोऽवरोहति ॥ ६ ॥

- 5 जगज्जेतुं किं कामोवरोहति । कुतोऽस्येयती दीप्तिरित्याह ।
कृतो मित्राणां मित्रस्यार्कस्य च संग्रहो येन । कुतो, विरागतो
वैराग्यात् । कुतोऽस्य वैराग्यं जातमित्याह । चन्द्रेण कामस्य
सुहृद्भावे सत्यपि शशिग्रेखरेण भस्मीकृतः । अयमर्थः । यदि
मम चन्द्रो मित्रं स्यात्तन्महाहोद्यतं हरमेष निवर्तयेदिति
10 वैराग्यान्मित्रस्य रवेः संग्रहं कृत्वा कामो भूमिमवतीर्णः ॥ ६ ॥

किमोषधौशस्य सहोदरो भिष-
कृतोपदेशश्चिरकालमश्विनोः ।
अनामयीकर्तुमदः क्षमातलं
त्विषां निधेमंडलमेष मुंचति ॥ ७ ॥

- 15 ओषधौशस्य चन्द्रस्य सहोदरो भिषग् धन्वन्तरिरिदं भूतल-
मरोगं कर्तुं सूर्यस्य मण्डलं किं मुंचति । स्वर्गे धन्वन्तरिः किं
स्थितवानित्याह । चिरकालमश्विनोः कृतोपदेशः । ओषधौ-
शस्य सहोदरो भिषगिति साभिप्रायम् ॥ ७ ॥

किमेष राशिस्थितिमेत्य भास्वता
वितौर्णदोषोपशमार्थवैभवः ।

उपप्लवं स्नेच्छकृतं महीसुतः

स्वभातुरंकं विनिहन्तुमागतः ॥ ८ ॥

महीसुतो भौमः स्नेच्छैःकृतमुपद्रवं निवारयितुं स्वमातु-
 भूमेरङ्गं किमागतः । स कथमुपद्रवं निवारयतीत्याह । एकस्मि-
 5 न्नेषादौ राशौ स्थितिमेत्य सूर्येण वितीर्णो दोषोपशमायं
 वैभवो यस्य । रविर्हि दोषोपशमं रात्रिनाशं करोति ॥ ८ ॥

अनूरुणाज्जातिरिति प्रवेशितो

निराकरिष्यंस्तिमिरं रमातलात् ।

गृहीतशिक्षः किमयं दिवाकरा-

10 द्वरामनन्तः पुनरेति रक्षितुम् ॥ ९ ॥

किमयमनन्तः शेषोर्कमण्डलात्पुनर्भुवमेति रक्षितुं वोढु-
 मित्यर्थः । भूतलादन्धकारं निवारयितुं । तत्रोपायमाह । सूर्या-
 दधीतान्धकारहरणशिक्षः । अर्केण कुतो हेतोः सोऽध्यापित
 इत्याह । अरुणेन मातृस्वसेयत्वात् प्रवेशितः । अथ - - - -
 15 धारितां भूमिं भूयो रक्षितुं - - - - - चेत्यन्वयः ॥ ९ ॥

सहस्रपादेन निकामसेवया

कृतप्रसादो द्वितयेन पादयोः ।

किमेष पापाकुलितं नु पुष्करं

पवित्रयिष्यन्नरुणोवरोहति ॥ १० ॥

दत्तपादद्वयः । सूर्यस्य महस्रपादत्वात् पदद्वयदानोक्तिसङ्गतिः ।
एषोरुणः किं नु स्नेच्छन्नोभितं पुष्करं पवित्रीकर्त्तुमवरूढः ॥ १० ॥

चिराय नारायणपादसेवया
किमुज्झितः पाशवपाशवैकृतैः ।
5 भवान्तरे शिञ्जितराक्षसक्षयो
ऽन्यरूपतामेत्ययमर्कभूर्हरिः ॥ ११ ॥

श्रीरामपादसेवया त्यक्तपशुजन्मपाशविकारो जन्मान्तरे
शिञ्जितराक्षसवधोऽयम् - - - - -
- - - - - ॥ ११ ॥

10 जनेन कानीनतया कदर्थितः
प्रविश्य युद्धक्रिययाऽर्कमंडलम् ।
अयोनिजन्मत्वसमेधितद्युतिः
किमेष कर्णः पुनरेति भूतलम् ॥ १२ ॥

— — — — — ततो युद्धे मरणेनार्क-
15 मंडलं प्रविश्य किमेष कर्णो भूतलमेति । कर्णः कथमियद्दीप्त
इत्याह । अयोनिजत्वेन समेधिता द्युतिर्यस्य ॥ १२ ॥

जगत्प्रदीपादपरः प्रदीपितो
जगत्प्रदीपो नु किमीश्वरेच्छया ।

किमेष वा द्वादशसूर्यतेजसा

कृतो भुवि द्वादशराजजित्वरः ॥ १३ ॥

जगत्प्रदीपादर्कादीश्वरेच्छया प्रदीपितो द्वितीयो जगत्प्र-
दीपः सूर्यः किमेष भवति । किंवा द्वादशानां सूर्याणां तेजसा
५ कृतः किमेष भवति । द्वादशविधराजजैत्र इति हेतुः ॥ १३ ॥

इति प्रतापायतनेन तेजसा

नभश्चराणां निचयेन चर्चितः ।

जगत्त्रयीपुण्यसमृद्धिसंगमः

पतंगमध्यात्पुरुषो विनिर्ययौ ॥ १४ ॥

10 इति प्रतापमूलस्थानेन तेजसा हेतुना एवं देवगणेन चर्चितः

कृतकल्पनः त्रिभुवनपुण्यराशिः पुरुषोऽर्कमण्डलान्निर्गतः ॥ १४ ॥

इतः प्रमृति 'स योपि रेवन्द' (Verse 34, below.) इत्यन्तं
पुरुषरूपवर्णनपरं कुलकम् ।

यथा द्युसिन्धोः सलिलाद्यथाग्नि-
स्तथैव पुण्यादपि भानुमण्डलात् ।

15

महेश्वरस्यैष* तनोः समुद्गतो

जगद्विषां संहृतये गुहः पुनः ॥ १५ ॥

आग्नेयो गांगेयश्च कुमार इत्यागमः । अतः कविरूहति ।
अष्टमूर्त्तिमूर्त्यन्तराङ्गजाजलान्तथाग्नेर्यथा कुमारः समुद्गतस्तथैव

पवित्रादष्टमूर्त्तिमूर्त्यन्तरात्सूर्यमण्डलाच्छत्रुक्षयार्थमेष कुमार इव
निर्गत इत्युत्प्रेक्षा । पुरुषो विषयो गुह्यो विषयी । विषयित्वेन
विषयस्य संभावनार्थं महातेजस्वं — — — — —
समानो धर्मः ॥ १५ ॥

5 स्वभावसि — — — — —
 प्रभावलीलावगतावकाशया ।
 शनेर्जनन्या प्रतिमान्यतावशा-
 न्निषिद्धयेव स्वयमेव नान्वितः ॥ १६ ॥

देवानां छाया न भवतीति प्रसिद्धिः । तदेव कविरुपेक्षा-
 १० पूर्वमुपन्यस्यति । शनेर्जनन्या च्छायया नान्वितः । कायाया अभावे
 हेतुं संभावयति । नैसर्गिकभूषणदौ — — — — —
 — — — — — इति भावः ॥ १६ ॥

पतंगवानायुजरोमकोमलै-
 निंकामकान्तैरसिकुन्तलोत्करैः ।
 गुणाननुज्झद्भिरिवान्वयाश्रया-
 न्विनिर्ममाणो रजनौपराभवम् ॥ १७ ॥

पतङ्गस्य रवेर्वा नायुजा येऽश्वास्तद्रोमवत्कोमलैरत्यर्थमेचकैः
 केणै रात्रेरप्यवमानं कुर्वन् । अत उत्प्रेक्ष्यते । कारणानु-
 गुणान् गुणानत्यजद्भिरिवेति । तेषां कारणं दिवार्कमण्डलो-
 20 त्यतः पुरुषः ॥ १७ ॥

अनूरूकान्त्येव दधद्विनिर्मित-

— — — — — ।

सरोजलक्ष्म्या सितरक्तया रवे-

रयं कुले रत्नमितौव चुंबितम् ॥ २३ ॥

- 5 अरूणांशुभिरिव कृतं स्मितकान्तिच्छुरितमधरं दधत् । अत्रो-
 त्रेक्ष्यते । अयं पुरुषः सूर्यवंगे रत्नभूत इत्यतो हेतोरिव पद्मिन्या
 शुभ्राण्यया लक्ष्म्या चुम्बितम् । माता हि पुत्रं चुम्बति ॥ २३ ॥

विनिर्मितेनेव तमोभिराहृतै-

र्विवस्वताऽन्धङ्करणैर्जगद्द्रुहाम् ।

- 10 विराजमानः सहजेन वर्मणा

नवांबुदेनेव नभोग्रसंगिना ॥ २४ ॥

- जगद्द्रुहां दैत्यानामन्धंकरणैरान्धकरैः सद्भिस्तमोभिः
 करणभूतैरादित्येनानीतैः कृतेन कवचेन शोभमानः । तत्कवच-
 दर्शनाद्धि दैत्यानां तमांसि दर्पा गलन्ति । नभोग्रात्सद्भिना
 15 मेघेनेति संभावनम् ॥ २४ ॥

विशन्निशाकान्तकलासुधालवैः

कलिन्दकन्याजलशेषशुक्तिषु ।

च्युतैरिवोत्पन्नमिनस्य मण्डले

मनोरमं मौक्तिकदाम धारयन् ॥ २५ ॥

- 20 यमुनाजलान्निर्गताद्यच्छेषं तदेव शुक्तयस्तासु पतितैः

प्रविशच्चन्द्रकलामृतकणैरर्कमण्डले उत्पन्नमिव मुक्ताहारं हारिणं
धारयन् ॥ २५ ॥

सुरद्विषां विघ्नयितुं मनौषितं
गृहीतमभ्यर्थ्य रवेरिवान्तिकात् ॥

5 उदारगारुत्मतनायकच्छलात्
समुद्रहन्नङ्गतले शनैश्चरम् ॥ २६ ॥

दौप्तगारुडमध्यमणिव्याजादुत्संगे शनैश्चरमिव दधत् । कुतः
प्राप्त इत्याह । रविसमीपाद्याचित्वा गृहीतमिव । याचने
हेतुमाह । दैत्यानामभिप्रायं हन्तुम् । शनैश्चरो हि सेवितः
10 शन्नून् हन्ति ॥ २६ ॥

किरीटकेयूरयुगाङ्गद्वयौ-
वतंसरत्नप्रतिबिम्बितामरः ।
सुतान् विधातुर्दधदर्यमार्पिता-
न्न वालखिल्यानिव नानुयात्रिकान् ॥ २७ ॥

15 किरीटकेयूरयुगे चाङ्गद्वय्यां च यानि वतंसभूतानि
रत्नानि तेषु प्रतिबिम्बिता अमरा यस्य सः । अतः संभाव्यते ।
अनुयात्रिकाननुगमनोद्यतान् ब्रह्मात्मजान् वालखिल्यानिव न न
दधदपि तु दधानः । वालखिल्याः केन हेतुना तं सेवन्ते इत्याह ।
अर्थम्णा दत्तान् । तेषां सूर्यविधेयत्वादिति भावः ॥ २७ ॥

प्रदी (?) सतेजो) रविमण्डलान्तरा-

दवाप्तकन्दारविधेयकर्मणि ।

कलिन्दकन्यासलिलानुजन्मना

स्वकीर्तिगङ्गासहवासिनासिना ॥ २८ ॥

- 5 कन्दारं शाणं - - - - लादिर्य - - - - विधेयं कर्तुं - - - - -
 प्राप्तशाणघर्षणेनेत्यर्थः । यमुनानुजन्मना यामुनसोदरेण स - - -
 - - - स्वकीर्तिगङ्गायाः स्पृहवानिव खड्गेन भ्राजमानः ॥ २८ ॥

न चक्रमेकं भवति प्रयो — —

— — — — — वाजिभिः ।

- 10 इतीव पित्र - रथाङ्गमुज्झितं

समुद्र — — — — — ॥ २९ ॥

- - - - - चक्रं रथस्य प्रक्रामकं न भवति शुद्धैररथी-
 कृतैरश्वैः संच - - - - - ॥ २९ ॥

विलोचनाग्निं विशतो — — —

- 15 — — — — — ।

दधङ्गले दक्षिणदृग्जुषा विभो-

र्विवस्वता प्राप्तचरीं समर्पिताम् ॥ ३० ॥

- सूर्येण दत्तां मालां कण्ठे धारयन् । अत्र संभाव्यते । हरस्य
 तृतीयनेत्रं विशतः कामस्य हस्तस्रस्तां धनुर्लतां हरस्य दक्षिण-
 20 नेत्रस्थेनार्केण हरस्य सकाशात्प्राप्तमद्य सूर्येण दत्ताम् ॥ ३० ॥

द्वितीयवैवस्वतवद्विरोधिनां
हठात्पदं मूर्ध्नि निधातुमुद्यतः ।
विनीलगुल्फाभरणांशुमण्डल-
च्छलेन पादौ दधदायसाविव ॥ ३१ ॥

- 5 द्वितीयो यम इव शूणां शिरसि बलाच्चरणं चेष्टुं प्रवृत्तो
नीलानां गुल्फाभरणानामंशुराश्रित्याजेन लोहमयौ पादाविव
दधन् । यमो हि लोहमयपादः ॥ ३१ ॥

- सपक्षपातं दिनपत्यपत्यमि-
त्यशेषभूमण्डलवन्द्यताकृते ।
10 चकासदंगुष्ठनखप्रभानिभात्
स्थितेन संध्यादितयेन पादयोः ॥ ३२ ॥

अयं दिनपतेरपत्यमित्यतो हेतोः समस्तजनैर्वन्दनीयत्वार्थं
सानुरागं स्थितेन संध्यादयेन चकासच्छोभमानोऽंगुष्ठांशुव्या-
जात् ॥ ३२ ॥

- 15 मनोरपि प्रस्तुतधर्मशासनः
शनैश्चरादप्यलसः कुपद्गतौ ।
हरौश्चरादप्यतिमिचवत्सलो
यथोचितं दण्डधरो यमादपि ॥ ३३ ॥

मनोरपि सकाशादारब्धधर्मव्यवहारः । तथा कुपद्गतौ

कुक्षितमार्गे भूमिमार्गे च शनैरप्यलसः । सुग्रीवादप्यतिशयेन
मित्रप्रियः । यमादपि यथोचितदण्डः । सूर्योत्पत्त्या मन्वा-
दिभ्यो भ्रातृभ्योतिरेको दर्शितः ॥ ३३ ॥

यदर्थ्यते किञ्चन येन केनचि-
5 त्तदस्य कर्णादपि दातुमीश्वरः ।
मनो दधानः सुमनोरुजाक्षयं
विधातुमुज्जागरमश्विनोरपि ॥ ३४ ॥

येन केन चिद्गुणिना निर्गुणेन वा यत्किञ्चन देयमदेयं वा
स याच्यते तदप्यर्थिने दातुं कर्णादप्युत्साहवान् । अश्विनोरपि
10 सतोरश्विनावनादृत्येत्यर्थः । सुमनसां देवानां साधूनां च रुजा-
क्षये सावधानं मनो दधत् ॥ ३४ ॥

स योपि रेवन्द इति प्रसिद्धिमा-
नपत्यरत्नं नलिनौविलामिनः ।
तुरङ्गविद्याचतुरस्ततोप्यसौ
15 मधुद्विषः पादसमीपमासदत् ॥ ३५ ॥
विंशत्या कुलकम् ॥

स योपि रेवन्दनामा प्रसिद्धः सूर्यस्य श्रेष्ठः पुत्रस्तस्मा-
दप्यश्वविद्याकुशलो विष्णोः पादतलं प्रापत् ॥ ३५ ॥

स पुष्कराशेषसमुद्रपूरितैः
20 कुलापगानां पयसा भृतैरपि ।

निधान कुंभैरपि रत्नसंकर-
प्रभाधनैरुत्पलदामहारिभिः ॥ ३६ ॥

अमर्जयद्भुजगीविभूषितै-
र्मृशं प्रमोदाश्रुभरेण निर्भरैः ।

5 महात्मनः षोडशभिर्विलोचनै-
र्महाभिषेकं विधिना सहाच्युतः ॥ ३७ ॥
युगलकम् ॥

सोऽच्युतोस्य महात्मनो विधिना ब्रह्मणा सह महाभिषेकं
षोडशभिर्नवैरारब्धवान् । यत आनन्दाश्रुपूरितैः उत्पलमाल-
10 मनोरमैः । तथा भूरेवभुजगी तथा समलंकृतैः पुष्करादि-
जलपूरितैर्निधानकुंभैरिव । तेऽपि भुजगीवृता भवन्ति । अभि-
षेके षोडश कुंभा योज्या इत्याचारः । यद्वा पुष्करादीनां च
षोडश संख्यात्वात्कुंभानां षोडशत्वम् ॥ ३६ । ३७ ॥

प्रणामकाले विधिवासुदेवयोः
15 करैश्चतुर्भिश्च करद्वयेन च ।
धृतोत्तमांगः स षडन्तरानपि
द्विषः प्रतिक्षेप्तुमिवाप्तवान्बलम् ॥ ३८ ॥

ब्रह्मणः करद्वयेनाच्युतस्य करचतुष्टयेन प्रणामावसरे धृत-
शिराः सन् कामादीन् षट् क्वचूज् जेतुं बलं प्रापत् । हस्तानां
20 षट्त्वादिव । प्रतीयमानोत्प्रेक्षा च ॥ ३८ ॥

अशेषगात्रोदरगर्भवतिनां
 तरंगिणीसागरपाथसां लवैः ।
 निरित्वरैर्नैवपथेन शार्ङ्गिणः
 समस्ततीर्थैरिव सोभ्यषिच्यत ॥ ३९ ॥

5 नद्यः सर्वांगसंधिषु कुक्षौ समुद्रश्चेति — — — हरेः
 समस्तांगेषु वर्त्तिनौनां नदीनां तथोदरे स्थितानां समुद्राणां
 जलकणैर्दृढमार्गेण हर्षवशान्निर्गच्छद्भिरशेषतीर्थैरिव सोभि-
 षिक्तः ॥ ३९ ॥

निसर्गपूर्णं कलशं दधद्विधि-
 10 हरिश्च शंखं तत एव पूरयन् ।
 धराधिपत्ये प्रमदाश्रुणा स्वतः
 कृताभिषेकं पुनरभ्यषिञ्चताम् ॥ ४० ॥

ब्रह्मा कलशं स्वभावजलपूर्णं दधद्भरिश्च समुद्रेभ्यः शंखं
 पूरयन्नुभौ ब्रह्माच्युतौ प्रथममानन्दवाप्येण कृताभिषेकं तं
 15 चक्रवर्तिने पुनरभ्यषिञ्चताम् ॥ ४० ॥

कलौ युगे बुद्धतया स्थितो हरि-
 र्ददाति यत्कारुणिको जनान्प्रति ।
 तदापदस्मादनुभावसप्तकं
 स सप्तलोकीविजयस्य साधनम् ॥ ४१ ॥

कलिकाले बुद्धरूपो हरिर्दयालुर्जनान् प्रति यद्ददाति
तदनुभावान्, वक्ष्यमाणानां प्रभावाणां सप्तकं विष्णुसकाशा-
त्प्रापत् सप्तभुवनजयस्थोपायम् ॥ ४१ ॥

5 महाप्रभावानुपलभ्य सप्त ता-
नवाप्तवान् सप्तमचक्रवर्त्तिताम् ।
यदस्ति किञ्चित्कर्णणीयमुच्यतां
तदित्यभूत्प्राञ्जलिरग्रतस्तयोः ॥ ४२ ॥

सप्त महतः प्रभावानाप्य सप्तमचक्रवर्त्तिभावं लभमानः स
कर्तव्यमाज्ञाप्यतामिति वदंस्तयोः पुरो बद्धाञ्जलिरभूत् ॥ ४२ ॥

10 सुदर्शनस्य प्रतिपादकं प्रति
त्रिनेत्रमुत्तानितपूर्वमेकदा ।
पुरोस्य विश्वाभयदक्षिणाकृते
प्रसारयामास करं जनार्दनः ॥ ४३ ॥

सुदर्शनस्य चक्रस्य दातारं त्रिनेत्रं प्रति हरिणा कदाचित्
15 पूर्वमुत्तानितं हस्तं हरिरस्याग्रे जगदभयदक्षिणार्थं प्रसारया-
माम सोत्तानं कृतवान् ॥ ४३ ॥

ततो नियुक्तः स यथोदिते विधौ
विधौ च देवे च विधौ तिरोहिते ।
यशस्यमर्त्याग्नि (सरोरु)हां विधौ
20 विधौतपाप्मा भरबन्धमग्रहीत् ॥ ४४ ॥

विधौ ब्रह्मणि विधौ विष्णौ च देवेऽन्तर्भूते सति ताभ्या-
मसुरवधे प्रेरितो विधौतपाग्नाऽनुचितपापः स पुरुषोऽसुर-
पद्मानां संकोचकत्वाच्चन्द्रसमे यशसि भरबन्धमभिनिवेशं
गृहीतवान् ॥ ४४ ॥

5

करेण चापस्य हरेर्मनीषा
बलेन मानस्य नयेन मन्त्रिभिः ।
धृतस्य नामाग्रिमवर्णनिर्मितां
स चाहमानोयमिति प्रथां ययौ ॥ ४५ ॥

स पुरुषश्चाहमान इति प्रथां प्राप्तः नाम्नामग्रिमाक्षरैः
10 कृताम् । केषां नामानौत्याह । करेण धृतस्य चापस्य तथा
मनीषया धृतस्य हरेस्तथा बलेन धृतस्य मानस्य तथा
मन्त्रिभिर्धृतस्य नयस्य । चापादीनां नामाद्यक्षरैरिव कृतां
चाहमान इति मंजां स लब्धवान् इत्यर्थः ॥ ४५ ॥

15

कदाचिदुत्कंठित एष मा स्म गा-
दिलोकयन्नर्कमितौव विष्णुना ।
विरिञ्चसामान्यमवेत्य लम्बितं
खनाभिपंकेरुहमातपत्रताम् ॥ ४६ ॥

एष सूर्यपुत्रः पितर्युत्कंठितः सूर्यं विलोकयन् सूर्यदर्शन-
हेतोः सूर्यं मागादितौव माहात्म्यविषये ब्रह्मणः सादृश्यमवेत्य
20 विष्णुनास्य खनाभिपद्मं कृत्रतां नीतम् । कृत्रत्वेन नाभिपद्मं
हरिरदादित्यर्थः । विलोकयन्निति हेतौ शतप्रत्ययः । अय-

मर्थः । ब्रह्मा मम नाभिपद्माश्रयः ! अयं च ब्रह्मणः सहृदयः ।
अस्याप्यहं निजपद्मं ददामीति । यदा विरिञ्चसामान्यं साधा-
रणमिति नाभिपद्मस्य विशेषणम् । तस्यातपत्रतामवेत्य लम्भि-
तम् । उपेत्येति पाठ आर्षः ॥ ४६ ॥

5 विवृद्धिमानौय दिनानि कानिचित्
पुनः पिता ते तनुतां तनोति मे ।
यशोनिधे तद्विमृहि त्वमेव मा-
मितौव सेवापरमिन्दुमण्डलम् ॥ ४७ ॥

तव पिता सूर्यो मां कंचित्कालं संवर्धं मम हानिं करोति
10 तस्माद्धेतोर्हं यशस्विंस्त्वमेव मां रक्षेतीव सेवायां सक्तं चन्द्र-
मण्डलम् ॥ ४७ ॥

तथा न विश्रान्तिपदं रिपुर्मधो-
रवैति मां मानद पुष्करं यथा ।
उपस्रवस्तद्द्रुतमेव वार्यता-
15 मितौव दुग्धार्णवमेव सेवकम् ॥ ४८ ॥

मधो रिपुर्विष्णुः पुष्करं यथा विश्रमस्थानं जानाति तथा
न मां जानाति तस्माद्धेतोर्होच्छोपद्रवः शीघ्रमेव वार्यतामित्यतो
हेतोः सेवकं चौरसमुद्रम् (इव) ॥ ४८ ॥

हिरण्यगर्भस्य कमण्डलूदरे
20 यमेव संस्थानविशेषमश्रुते ।

तमेव धृत्वेव महेश्वरभ्रमात्
स्थितं हृदं मूर्धनि सौरसैधवम् ॥ ४९ ॥

ब्रह्मणः कमण्डलुमध्ये गंगाजलं यमेव संनिवेशनं प्राप्नोति
तमेव संनिवेशं गृहीत्वा यं महेश्वर इति भ्रमाच्छिरसि स्थितं
5 गंगाप्रवाहमिति रूपकम् । अयमपि हि महान् भूमेरौ-
श्वरः ॥ ४९ ॥

नभस्सरस्सारसयोर्बलद्विषा
हिमाचलस्य स्फटिकाचलस्य च ।
ध्रुवं कृतं पक्षतिभिर्नभश्चरै-
10 रमित्रशान्त्यर्थमुपायनौकृतम् ॥ ५० ॥

नभ एव सरस्तत्र सारसयोर्हंसयोर्हिमाद्रिकैलासयोः संब-
न्धिभिः पक्षतिभिः पक्षैरिन्द्रेण नूनं कृतं सत् शत्रुक्षयार्थं
देवैर्दौर्जनौकृतम् ॥ ५० ॥

अदृश्यमूर्तिः स्वयमुष्णवारणं
15 रथांगपाणेस्सहधर्मचारिणी ।
समुन्नतिं सूर्यकुले करिष्यतो
रघोरिवास्यापि बभार मूर्धनि ॥ ५१ ॥

जनैरदृश्या श्रीः सूर्यकुले माहात्म्यं करिष्यतोऽप्य रघोरिव
शिरसि धृतवतौ कृत्रम् ॥ ५१ ॥ कुलकम् ॥

अयं यथा मे तनयस्तथा कृतौ
न कश्चिदन्योपि कदाचिदप्यभूत् ।
इति स्वकं बिम्बमिवोष्णरश्मिना
प्रतापवृद्धैकतमानुयात्रिकम् ॥ ५२ ॥

5

अचिन्तयद्यो मनसापि विप्रियं
तमप्युपस्थाय विहन्तुमौश्वरम् ।
सुदर्शनादप्यधिकप्रभावभा-
गुपास्तचक्रं विजयेषु तं दिशाम् ॥ ५३ ॥
युगलकम् ॥

10 अयं मम पुत्रो यथा कृतौ भवति तथा कोपि नान्यो
मत्पुत्रोभूदित्यतो हेतोस्सूर्येण प्रतापवर्धनार्थमानुयात्रिकं कृतं
निजं बिम्बमिव ॥ तथा यो मनुष्यो देवो वा चित्तेनाप्यनिष्टं
चिन्तयति तमप्येत्य निहन्तुं समर्थं यतो हरिचक्रादपि
मप्रभावं चक्रं विजयकालेषु तं सिषेवे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

15

प्रजापतेः सृष्टिरिवात्तविग्रहा
स्थितिक्रिया मूर्तिमतीव वैष्णवी ।
किमन्यदध्यापितदेहडम्बरा
स्वयं नवा संहतिशक्तिरैश्वरी ॥ ५४ ॥
दधत्यशेषैरपि लक्ष्मणैस्तनू-
मलंकृतां रत्नमणौचिमालिनीम् ।

20

अभून्नदौभर्तुरिवाधिदेवता

पुरोस्य तांबूलकरंकवाहिनी ॥ ५५ ॥

युगलम् ॥

मूर्त्तिमती ब्रह्मणः सृष्टिरिव । तथा मूर्त्ता विष्णुसंबन्धिनी
 5 स्थितिरिव । तथा किमन्यद्वर्णयाम इति शेषः । अध्यापितः
 शिञ्चितो देहडंबरो मूर्त्तिग्रहणं यया सा हरस्य संहारशक्ति-
 रिव ॥ सर्वैरुत्तमस्त्रौलक्ष्णैर्भूषितं नानारत्नधारकं शरीरं
 दधती अत एव रत्नाकरस्याधिदेवतेव तांबूलकरंकवाहिनी
 पुरोस्थाभवत् ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

10 रदं ममोन्मूलयति स्म यश्छला-
 दमुष्य वक्त्राणि यथैवसन्ति षट् ।
 तथैव दंतान् दनुजक्षयक्षमा-
 नहं न गृह्णामि किमित्यसूयया ॥ ५६ ॥
 गृहीतवानभ्यधिकं प्रभावतः

15 पतिर्गणानामिव दन्तपंचकम् ।
 मुखानुरूपीकृतसर्वविग्रह-
 स्तमन्वगादाजिषु गंधसिंधुरः ॥ ५७ ॥

युगलकम् ॥

यो मम दन्तं क्लादुन्मूलितवांस्तस्य कुमारस्य यथा षण्
 20 मुखानि सन्ति तथैव षट्संख्यान् दानवदलनदत्तान् दशनानहं
 किं न दधामीत्यसूयया प्रभाववशादंतपंचकमाददानो मुख-

सदृशीकृतसमस्तशरीर एकदन्त इव गंधहस्तौ समरेषु तम-
नवगात् ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

दिगष्टकं जेतुमशेषमंशुमा-
नवश्यमष्टैव बभार वाजिनः ।

5 इमं त्वमुष्मै प्रतिपाद्य सूनवे
ध्रुवं गतः संप्रति सप्तसप्तिताम् ॥ ५८ ॥

- - - - -
- - - - - द्विहायसा ।

स्वकान्तिसर्वस्व - - - - -

10 - - - - - ॥ ५९ ॥

युगलकम् ॥

एकैकैकैक एके जीयंत इति युक्तम् । अतोष्टौ दिशो जेतुं
सूर्याष्टैवाश्चानवहत् । अद्य पुनस्तेषामश्चानां मध्यादेकमश्वं दत्वा
सप्ताश्वतां सूर्या गत इत्येवं कवीनां स्तुतौ योग्यो ह्ययन्तम-
15 नवगात् । मयूरकण्ठ - - वर्णत्वात्संभाव्यते । विलंघ्यनीयेनाक्रम-
णीयेन व्योम्ना दत्तं निजद्युतिसर्वस्वमिव दधत् ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

विमुच्य(ते) - - - - -

- - - - - दधेः सुता मम ।

इतीव बुद्ध्या परिवर्ज्य कौस्तुभं

20 स्यमंतकः शार्ङ्गभृता समर्पितः ॥ ६० ॥

निषी(शै)थमार्त्ताण्ड इति क्षमातले
 प्रसिद्धनामा मकलेऽपि तं मणिः,
 मृगांकमौलेः मममौर्षिकाधृतः
 पितेव चूडाभरणं व्यभूषयत् ॥ ६१ ॥

5

यगन्तकम् ॥

अस्य दातुं लक्ष्मोसहोदरः मणिः कौस्तुभो मया यद्य-
 पसार्यते तर्हि कौस्तुभसोदरी मद्यं कुण्ठतीतीव बुद्ध्या कौस्तुभ-
 मदत्वा शार्ङ्गिणास्य स्थमन्तको दत्तः ॥ रात्रिरविरिति भूतले
 प्रसिद्धो मौलिभूषणभूतस्तथा चन्द्रमौलेः स्पर्धया हेतुभूतया
 10 तेन पिता सूर्य इव धृतः । हरश्चन्द्रमौलिः । अहं सूर्यमौलि-
 र्भवामौति स्पर्धया धृतः । स्थमन्तकः सुवर्णसावौ जाम्बवज्ज-
 प्राप्नो मणिः ॥ ६० ॥ ६१ ॥

पतिर्धनानामजगंधवामिना
 शिवेन दत्तस्व इव स्वतः सखा ।
 15 उपागतो वा स्वयमेव रक्षितुं
 प्रतार्यमाणो नडकूबरभ्रमात् ॥ ६२ ॥
 धनेन कोशाधिपतिर्मृधे मृधे
 व्यथीकृतेनाप्यममाप्तसंग्रहः ।
 स्मेरुत्वाकरगेहिणाचल-
 20 प्रभावजैत्रो वरिवस्यति स्म तम् ॥ ६३ ॥
 यगन्तकम् ॥

अजगंधाख्यप्रदेशे निवसता शिवेन स्वसमीपाद्तत्त्वः सखा
वैश्रवण इकोपगतः । अथवा तस्मिन्नडकूबरभ्रान्त्या रक्षितुं स्वय-
मेव धनपतिरागतः । इवेत्युत्प्रेक्षा ॥ युद्धे युद्धे व्यथीकृतेनापि
भाण्डागारेणासमाप्तः संग्रहो यस्य स कोशपतिर्हमाद्रिरत्ना-
कररत्नाचलेभ्योऽधिकस्तं सेवितवान् ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

भरक्ष्मो गान्धसमंक्षयं प्रति

त्वयानुजोऽसावनुगम्यतां मृधे ।

इतीव वाक्यं सवितुर्यमः स्वयं

नरात्मना राम इवानुपालयन् ॥ ६४ ॥

10

अतीव यो दुर्बल एव सर्वथा

तमप्यधिष्ठाय बलिष्ठतां नयन् ।

समाप्तशस्त्रास्त्रविधौ धनंजयो

बभूव सेनापतिरस्य शाश्वतः ॥ ६५ ॥

युगलकम् ॥

15

राक्षसव्यप्रवृत्तोमौ कनिष्ठो भ्राता भवतानुगम्यतामित्ये-

तत्सूर्यस्य वचोनुपालयन् मनुष्यरूपेण यम इत्यारोपः । तथा

राम इवेति । स हि सवितुः पितुर्दशरथस्याज्ञामपालयत् ॥

तथात्यर्थं यो दुर्बलस्तमप्यधिष्ठाय स्वपत्नीकृत्यातिबलवत्त्वं नयन् ।

शस्त्रकर्मण्यस्त्रकर्मणि चास्य धनंजयोर्जुनः शाश्वतः सेनापति-

20

रक्षोऽभूत् । धनंजयाख्यो वायुश्च बलप्रदः ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

स सप्तसप्तेरपि विस्मयप्रदा-
 निति प्रभावानुदवाप सप्त यत् ।
 तदन्वशात् सप्त सरित्पतीनपि
 त्रिपुष्करं नाम किमस्य दुर्जयम् ॥ ६६ ॥

- 5 सप्तसप्तेः सूर्यस्याष्याश्चर्यात्पादकान् पूर्वाक्तान् सप्त प्रभावान्
 स यत्प्राप तत्ततो हेतोः सप्त समुद्रानपि स चाहमानो जित-
 वान् । अस्य त्रिपुष्करं किं कथं दुर्जयम् । त्रिभ्यः सप्ताना-
 मधिकत्वादिति च ॥ ६६ ॥

10 स सप्तभिर्वारिधिभिः पुरस्कृतं
 विजयीमानैरिव रत्नसप्तकम् ।
 हरिप्रभावार्जितमूर्जितं दध-
 न्न चक्षमे द्वीपपतीनपि प्रति ॥ ६७ ॥

- विष्णुप्रसादप्राप्तं पूर्वाक्तं रत्नसप्तकं दधत् । अतः संभाव्यते ।
 जितैः सप्तभिः समुद्रैर्दत्तमिवेति स द्वीपाधिपानपि नास-
 15 हिष्ट ॥ ६७ ॥

स पूर्वरंगार्थमिव क्षमातले
 मधुद्विषा स्थापकतामनीयत ।
 प्रपित्समानेन विहाय बुद्धतां
 समुद्धतां स्नेच्छचिकित्सिनीं तनुम् ॥ ६८ ॥

- 20 शांतं बुद्धरूपं त्यक्त्वा स्नेच्छच्छेदकं रूपं प्रपत्तुमिच्छता

दैत्यारिणा स चाहमानः पूर्वरंगार्थं स्थापकतामिव नीतः ।
स्थापकः सूत्रधारः । नटेन च प्रथमाभिनीतं रूपं त्यक्त्वा
रूपान्तरं कर्तुंकामेन सूत्रधारः क्रियते ॥ ६८ ॥

विकटकौकृत्य स सर्वतो धरां
5 प्रतापपुष्टांश्च विधाय भूभृतः ।
क्रमेण दावाग्निरिवोदपीपद्
घनं प्रजातापसमापनं कुलम् ॥ ६९ ॥

समस्तां भूमि निष्कण्टकां कृत्वा भूभृतो राज्ञश्च प्रतापेन
धूम्रान् कृत्वा स घनमहं मेघं च प्रजातापनिवारकं कुल
10 मजनयत् । अत एव दावाग्निरित्युपमा ॥ ६९ ॥

समागतः पुष्करतीर्थयात्रया
प्रसंगतः कंचन कालमुर्वराम् ।
परीक्ष्य सर्वामधियोगिनां गुरु-
यथागतं भास्करमंडलं ययौ ॥ ७० ॥

15 त्रिपुष्करे तीर्थे तीर्थयात्रया हेतुभूतया भूमिमागतः
प्रसंगेन महीं परीक्ष्य परिपाल्य स महायोगी यथागतं सूर्य-
मंडलं प्रति गतवान् । योगी च सूर्यमंडलं प्रविशतीत्यर्थ-
च्छाया ॥ ७० ॥

अचाहमानापि रराज मेदिनी
20 विगाहमाना रुचिरं तदन्वयम् ।

BIBLIOTHECA INDICA:
COLLECTION OF ORIENTAL WORKS

PUBLISHED BY THE
ASIATIC SOCIETY OF BENGAL
NEW SERIES, No. 1420.

PRTHVĪRĀJA VIJAYA.

A SANSKRIT EPIC WITH THE COMMENTARY OF
JONARĀJA.



BY
S. K. BELVARKAR. M.A., PH.D.

FASC. II.

—————
CALCUTTA:
PRINTED AT THE BAPTIST MISSION PRESS,
AND PUBLISHED BY THE
ASIATIC SOCIETY, 1, PARK STREET.
1918

ASIATIC SOCIETY OF BENGAL,

No. 1, PARK STREET, CALCUTTA,

AND OBTAINABLE FROM

The Society's Agent—

MR. BERNARD QUARITCH, 11, Grafton Street, New Bond Street, London,

*Complete copies of those works marked with an asterisk * cannot be supplied—of the Fasciculi being out of stock.*

BIBLIOTHECA INDICA.

Sanskrit Series.

| | Rs. |
|--|-----|
| Açvavaidyaka, Fasc. 1-5 @ -/10/- each | 3 |
| Advaitachintā Kaustubha, Fasc. 1-3 @ -/10/- each | 1 |
| Agni Purana (Text), Fasc. 1-14 @ -/10/- each | 8 |
| *Aitareya Aranyaka of Rig-Veda (Text), 2-4 @ -/10/- each | 1 |
| Aitarēya Brāhmaṇa, Vol. I, Fasc. 1-5; Vol. II, Fasc. 1-5; Vol. III, Fasc. 1-5, Vol. IV, Fasc. 1-8 @ -/1/- each | 14 |
| Aitareyalocana | 2 |
| Amarakosha, Fasc. 1-2 | 4 |
| *Anu Bhasyam (Text), Fasc. 2-5 @ -/10/- each | 2 |
| Anumana Didhiti Prasariṇi, Fasc. 1-3 @ -/10/- each | 1 |
| *Aphorisms of Sandilya (English), Fasc. 1 @ 1/- | 1 |
| Aṣṭasāhasrikā Prajñāpāramitā, Fasc. 1-6 @ -/10/- each | 3 |
| Atharvana Upanishads (Text), Fasc. 1-5 @ -/10/- each | 3 |
| Ātmatattvaviveka, Fasc. 1-2 | 1 |
| Avadāna Kalpalatā (Sans. and Tibetan), Vol. I, Fasc. 1-13, Vol. II, Fasc. 1-11 @ 1/- each | 24 |
| Bālam Bhaṭṭi, Vol. I, Fasc. 1-2, Vol. II, Fasc. 1 @ -/10/- each | 1 |
| Bardic and Historical Survey of Rajputana. A Descriptive Catalogue of Bardic and Historical Manuscripts. Sec. I, Prose Chronicles, Part I, Jodhpur State | 1 |
| Ditto Descriptive Catalogue of Bardic and Historical Manuscripts, Sec. I, Prose Chronicles, Part II, Bikaner State | 1 |
| Ditto Descriptive Catalogue of Bardic and Historical Manuscripts. Sec. II, Bardic Poetry, Part I, Bikaner State | 1 |
| Bardic and Historical Survey of Rajputana. Vacanikā Rāthora Ratana Sūrghajī ri Mahesadāsōta ri Khiveyā Jagā ri Kahi | 1 |
| Bauddhastotrasangraha | 2 |
| Baudhāyana Śrauta Sūtra, Fasc. 1-3; Vol. II, Fasc. 1-5; Vol. III, Fasc. 1-2 @ -/10/- each | 6 |
| Bhamati (Text), Fasc. 1-8 @ - 10/- each | 5 |
| Bhasavrittay | 0 |
| Bhāṭṭa Dīpikā, Vol. I, Fasc. 1-6; Vol. II, Fasc. 1-2 @ -/10/- each | 5 |
| Bodhicaryāvatāra of Çāntideva, Fasc. 1-7 @ -10/- each | 4 |
| Brahma Sūtras (English), Fasc. 1 @ 1/- | 1 |
| Brhaddevatā, Fasc. 1-4 @ -/10/- each | 2 |
| Brhaddharma Purāṇa, Fasc. 1-6 @ -/10/- each | 3 |
| Çatadūṣaṇi, Fasc. 1-2 @ -/10/- each | 1 |
| Catalogue of Sanskrit Books and MSS., Fasc. 1-4 @ 2/- each | 8 |
| *Çatapatha Brāhmaṇa, Vol. I, Fasc. 1-7; Vol. II, Fasc. 1-5; Vol. III, Fasc. 1-7; Vol. V, Fasc. 1-4 @ -/10/- each | 14 |
| Ditto Vol. VI, Fasc. 1-3 @ 1/4/- each | 3 |
| Ditto Vol. VII, Fasc. 1-5 @ -/10/- | 3 |
| Ditto Vol. IX, Fasc. 1-2 | 1 |
| Çatasahasrikā-prajñāpāramitā, Part I, Fasc. 1-18, Part II, Fasc. 1 @ -/10/- each | 11 |
| *Caturvarṇa Chintāmaṇi, Vol. II, Fasc. 1-25; Vol. III, Part I, Fasc. | |

प्रवीराः श्रीचाहमानस्य कुलमभूषयन्नित्यन्वयः । आदित्य-
रश्मिभिर्दुरतिक्रमं दुर्लभं यत्पारियात्रकपार्श्वान्तरं तत्र प्रतिदिनं
पथिकः कीर्त्तिः कायो येषां ते । तथा सप्तसमुद्रविषयः
शाश्वतो नित्यो यो वाडवाग्नेर्व्यापारः ज्वलनं तस्य पारगमने
५ पराभवे प्रगुणः समर्थः प्रतापो येषाम् ॥ ७३ ॥

दृष्टस्वपूर्वपुरुषोदयभूप्रदेश-

सेनारजोऽभिभवस्त्रिन्नसहस्रनेत्राः ।

अश्रान्तयज्ञशततर्पितहव्यवाह-

शुद्धान्तगौतभुजसाहससंप्रदायाः ॥ ७४ ॥

10 स्वपूर्वपुरुषस्यादित्यस्योदयभूप्रदेश उदयपर्वतो दृष्टो येन
तस्य सेनारजसोभिभवेन स्त्रिन्नः खेदितः सहस्रनेत्रो यैस्ते ।
सहस्रनेत्र इति साकूतम् । तथा अश्रान्तं नित्यं कृत्वा यज्ञ-
शतेषु तर्पितो यो हव्यवाहोऽग्निस्तस्य शुद्धान्तः स्वाहा तथा
गौतो भुजसाहससंप्रदायो येषां ते ॥ ७४ ॥

15 वैवस्वतायुधभुजङ्गमसह्यमान-

निशश्रोत्रताऽनधिगतोष्ट्रचर्मूनिनादाः ।

लङ्काधिपत्यभयदानमयापदान-

वार्ताश्रुतिक्षपितनैर्ऋतचित्तदौस्स्थ्याः ॥ ७५ ॥

वैवस्वतस्य यमस्यायुधैः पाशैर्भुजङ्गमैः सह्यमानो यतो
20 निष्कर्णतयाऽनधिगत उष्ट्रसेनाशब्दो येषां ते । तथा विभीषण-
स्याभयदानरूपं यदपदानं साहसं तद्वार्ताश्रवणेन क्षपितं

निवारितं चित्तदौस्थ्यं चित्ते लोभो येषां ते । अयमर्थः ।
 असद्वंशेन श्रीरामेणास्मै राज्यं दत्तमिति तैर्जिष्णुभिर्विभीषण-
 स्थाभयं दत्तमतस्तत्पक्षभूतस्यापि नैर्ऋतस्याप्यभयं ग(? फ)लि-
 तमिति ॥ ७५ ॥

5 प्राचेतसप्रियतमासुरतान्तखेद-

निर्भेदवेदिकटकद्विपकर्णवात्याः ।

पूर्णीदरज्वलननिर्वृतिनिर्विकार-

सारथ्यमुक्तमरुदीरितसाधुवादाः ॥ ७६ ॥

प्राचेतसीनां प्रियतमानां वरुणस्त्रीणां सु(र)तान्तखेदस्य
 10 निर्भेदं विदन्ति कुर्वन्ति । खेदहारिण्य इत्यर्थः । एवं विधाः
 कटकद्विपानां कर्णवात्या येषाम् । तथा यज्ञेषु पूर्णीदरो यो
 ज्वलनस्तस्य निर्वृतिः सुखं तथा निर्विकारो यतः सारथ्यमुक्तो
 यो मरुत्तेनेरितः साधुवादो येषाम् ॥ ७६ ॥

कैलासशैलशिखराश्रयकिन्नरेन्द्र-

15 कर्णामृतहृदपराक्रमगीतशब्दाः ।

ईशानचन्द्रसहवासमहाविदग्ध-

दोर्दण्डकौर्त्याधरितद्युसरित्प्रवाहाः ॥ ७७ ॥

कैलासनिवासिनां संबंधी कर्णयोः सुधाप्रवाहसदृशः
 पुरुषकारगीतशब्दो येषां ते । तथा ईशानचन्द्रेण सह वासे
 20 महाविदग्धो दोर्दण्डकौर्त्या भुजयशसाऽधरितो जितो गंगौ-
 घो यैस्ते ॥ ७७ ॥

एवमष्टदिक्पालपराजयध्वननमुक्ता हरिसेवादिरूपेण पा-
तालाकाशस्थापकतामाह ।

सेनाहयोद्गमितधूलिलघूभवन्भू-

धृत्यल्पयत्नफणिशायितवासुदेवः ।

5 लक्ष्मीमुखोच्च(र)णलग्नसुधासधर्म-

माधुर्यकीर्त्तिसुखिनौकृतसप्तलोकाः ॥ ७८ ॥

सेनाश्वैरुत्थापिता धूलिर्यस्यास्ततो लघूभवन्ती या भूस्तस्या
धृत्यर्थं धारणार्थमल्पयत्ने फणिनि शेषे शायितो वासुदेवो
यैस्ते । तथा अत एव लग्न्या मुखोच्चरणेनेव लग्नं सुधा-
10 सधर्माभूतसमं माधुर्यं यस्याः । तथा कीर्त्या सुखौकृताः
सप्तलोका यैस्ते ॥ ७८ ॥

ब्रह्मारविन्दमकरन्दकणान्तरङ्ग-

तौरङ्गधूलिविरसौकृतदिव्यमृंगाः ।

श्रीचाहमानकुलमुज्ज्वलयांबभूव-

15 दोर्मंडलाभरणभूवलयाः प्रवीराः ॥ ७९ ॥

ब्रह्मकमलव्यापिवाजिरजोविरक्तालिकुलाः । तथा दोर्मं-
डलस्याभरणं भूवलयो येषां ते ॥ ७९ ॥

रिक्थक्रमादुपनतं नलिनीभुजंगा-

दारभ्य यद्वसु ददुः शरणागतेभ्यः ।

वाणिज्यवर्धितमिवानुदिनं तदेषां ।

प्रायो भुवोऽरविशिष्टदशाप्रवेशम् ॥ ८० ॥

सूर्यादारभ्यरिक्थकमादपनतं प्राप्तं वसु तेजो धनं च ते
शरणागतेभ्यो यद्ददः । यद्वा शरणागतेभ्य - - - - ददरिति
५ योज्यम् । शरणागतेभ्यो - - - - । तद्वाणिज्येन व्यवहारेण
वर्धितमिव तद्वसु उत्तरोत्तरं विशिष्टदशाया अनुप्रवेशं
प्रापत् ॥ ८० ॥

वास्तोष्पतेः समरपर्वसहायतार्थ-

मायासितैः सततमूर्ध्वगतागताभ्याम् ।

10 प्रेतप्रभोरसुशकैरपि नेतुमर्था-

स्तैः स्वेच्छयैव विदधे चिदिवे निवासः ॥ ८१ ॥

वास्तोष्पतेरिन्द्रस्य संग्रामेषु माहाय्यार्थमूर्ध्वगतेनाकाशगम-
नेन तथा आगतेन आकाशाद्भूमाववरोहणेन च नित्यं खिन्नैः ।
तथा यमस्यापि भूमेः सकाशान्नेतुमशक्यैस्तैः स्वेच्छयैव स्वयमेव
15 स्वर्गे निवासः कृतः ॥ ८१ ॥

अष्टासु दिक्पतिपुरेषु यथेष्टमेषां

रक्षःक्षयोपकृतये कृतिनां स्थितानाम् ।

भूस्तंभिताष्टगिरिमंडपदिग्दिपेन्द्र-

स्तंभाष्टकेन समपत्यत राजधानी ॥ ८२ ॥

20 अष्टसु लोकपालनगरेषु राक्षसविनाशेनोपकारार्थं स्वेच्छया

स्थितानामेषां चाहमानवंशानां राज्ञां भूमिः राजधानी नगरी
मंपन्नाऽभूत् । स्तंभितान्यष्टगिरय एव मंडपानि येन तद्
दिग्द्विपेन्द्राणामेव स्तंभानामष्टकं यस्याः । राजधान्याश्च मंडप-
धारणार्थं स्तंभा अष्टौ भवन्ति ॥ ८१ ॥

5 वंशे तेषामशेषप्रथमनृपभुजाकौर्त्तिसंपद्बलाका-
प्रेमारंभानुकूलच्छविसदसिपटांभोदविश्रांतिशैलः ।
कैलासोत्संगसंगीतकसभिकशिवादिष्टगंधर्वरामा-
गातव्योद्दामकर्मा समजनि वसुधावासनो वासु-
देवः ॥ ८३ ॥

10 तेषां कुले वासुदेवनामा राजा जातः । समस्तानामादि-
राजानां या कौर्त्तिसंपत् सैव बलाका तस्याः प्रेमारंभे
सु()साधुर्योऽसिपटः स एवांभोदस्तस्य विश्रांत्यर्थं शैलः ।
पूर्वेषां कौर्त्तिवर्धक इत्यर्थः । कैलासोत्संगं सभिकेन शिवेना-
दिष्टाभिगंधर्वरामाभिर्गातव्यान्युद्दामकर्माणि साहसानि यस्येति

15 भद्रम् ॥ ८३ ॥

श्रीलोलराजसुतपंडितभट्टनोन-

राजात्मजो विवरणेन सुबोधमाधात् ।

सर्गं द्वितीयमग्रनैरिह जोनराजः

पृथ्वीमहेन्द्रविजयाभिधकाव्यराजे ॥ १ ॥

इति पृथ्वीराजविवरणे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ॥

समभूद्यदा स - - दानविधि-

वृष्टुस्तदा सुमनसो जलदाः ।

परिकंपिनां यशसि हानिभयात्

सुरशाखिनां स्वयमिव खलिताः ॥ १ ॥

- 5 यदा स वासुदेवो जातस्तदा मेघाः कल्पवृक्षाणां पुष्पाणि
वृष्टुः । अत्र संभाव्यते । यतो दानेन निधिरतो यशोविषये
हानिभयात् कंपमानानां कल्पवृक्षाणां स्वयं पतितानीव ।
कल्पवृक्षेभ्योऽप्यधिकं दातेत्यर्थः ॥ १ ॥

नन्तुर्दिनं सकलमप्सरसः

- 10 परिदध्वनुर्विजयदुन्दुभयः ।

प्रमदं दधुर्यममृतोद्धरणात्

पुनरेव तं सुमनसोन्वभवन् ॥ २ ॥

- अप्सरसो नन्तुः । दुन्दुभयो दध्वनुः । सकलं दिनमित्यने-
नोभयोर्वाक्ययोः संबंधः । अमृतलाभेन देवा यं हर्षं प्राप्नुस्त-
15 ज्जन्मना तं पुनरेव प्रापुः ॥ २ ॥

द्युनदौहृतैः कनकतामरसै-

र्मरुतो ववर्विरचिताभरणाः ।

गगनात्मना शशिशिरोमणिना

प्रकटौकता कनकवृष्टिरिव ॥ ३ ॥

गंगाह्वेमपद्मैः कृतभूषणा वायवो ववुः । अतः संभाव्यते ।
आकाशरूपेण शशिशिखरेण सुवर्णवृष्टिरिव मुक्ता ॥ ३ ॥

5 दिवमुच्चकैरमृत तस्य यशो

जलदैर्विना जलकणैः पतितम् ।

परिपीडितादमृतदौधितितो

विनिरित्वरैरिव सुधापृषतैः ॥ ४ ॥

तस्य यशो द्यामपूरयत् । मेघैर्विना जलकणैः पतितम् ।
10 तद्यशमा पीडिताच्चन्द्रान्निर्गच्छद्भिरमृतकणैरिव । इत्वरैरिति
सृजोष्णसां षकरप् ॥ ४ ॥

सवितुः कुले कति न भूपतयो

भुजशालिनः समभवन्नपरे ।

स पुनर्यथा व्यवजहार तथा

1: न भगीरथो न सगरो न रघुः ॥ ५ ॥

सूर्यस्य कुलेऽपरे कति न राजानो भुजाभ्यां शोभमानाः
प्राग्जाताः । स वासुदेवस्तु यथा व्यवहारमकरोन्न तथा भगी-
रथादयः ॥ ५ ॥

न स पर्वतो न तदरण्यमभू-

न्नगरी न सा न मरुमही न च सा ।

स विनिर्ममे न खलु यत्र नृपः

सरसीः प्रपाः सुरगृहाणि मठान् ॥ ६ ॥

- 5 स राजा मरस्यादीन्यत्र नाकरोत्ते पर्वतादयो नाभवन् ।
सर्वेषु पर्वतादिषु मरस्यादीन् कृतवानित्यर्थः ॥ ६ ॥

न शिखंडिनो जलधरं प्रथमं

न चकौरकाः शुचिनिशाशशिनम् ।

न पिकास्तथा तरुणमाम्बवनं

- 10 जहृषुः प्रजास्तमवलोक्य यथा ॥ ७ ॥

यथा त दृष्ट्वा जनास्तुषुस्तथा न मयूरादयो मेघादीन्
दृष्ट्वा तुष्यन्ति । मेघादिभिरिव मयूरादयस्तेन प्रजा दत्तवृत्तय
इत्यर्थः ॥ ७ ॥

न हिमाद्रिणा प्रलयजेन तथा

- 15 शिशिराऽभवच्चिरमनेन यथा ।

न सुमेरुणा न मणिभूमिमृता

वसुमत्यपि क्षितिर्नेन यथा ॥ ८ ॥

यथानेन राज्ञा हततापा भूरभून्न तथा हिमाचलचन्द-
नाभ्याम् । यथामुना भूर्धनवत्यभून्न तथा सुमेरुरोहि- - -

----- वती क -----

(कमलाल)याऽऽगवती नृपतीन् ।

कमलोपमादपि तदंघ्रिमगात्

प्रणिपत्य तां पुनरवापुरमी ॥ ६ ॥

5 या लक्ष्मी राजस्यक्ताऽऽगतवती ताममी अपि राजान-
स्तत्पादपद्मद्वयं प्रणम्य ततः प्रापुः । अत एव कमलालयेति
विशेषणमर्थवत् । तत्सेवकानामेव राज्ञां श्रीरासीन्नाऽन्येषा-
मिति भावः ॥ ६ ॥

मखभूमिगैः शतमखप्रमुखै-

10

ररुदन्यतो दिगधिकप्रमदाः ।

मखधूम्यया निरपवादमतः

परिवधमे पिहितदिक्तटया १० ॥

अस्य यज्ञगतैरिन्द्रादिभिर्हेतुभिस्तद्रामा अरुदन् रुदन्तीति
यज्ज्ञातमिति शेषः । अतस्तन्मखधूमजालेन च्छादितदिगन्तेन
15 निरपवादं कृत्वा भ्रान्तम् । अयमर्थः । मख ----- लोक-
पालस्त्रीणां बाष्पनिर्गलनमभूत् । लोकास्त्वजानन् । चिरं पति-
प्रवासो बाष्पहेतुरिति । न तु स तासामभूत् । यद्यज्ञेषु
इन्द्रादीनां पोषलाभात् । अतो यज्ञधूमेन दूषणं न प्राप्तम् ।
अथवा पतिप्रवासेन लोकपालाबला यदरुद - - - - - यज्ञ-

धूम्यथा नि - - - - - सेनैवैता रुदन्तीति लोकैर्ज्ञात-
मित्यर्थः । दृक्पुटयेति पाठः ॥ १० ॥

सुरसद्मनामविरतापचितौ

द्रुममस्तके न कुसुमं ददृशे ।

5 **अपरागिणं विदधिरे पवनं**

नभसागतं कचन नोपवने ॥ ११ ॥

देवानां नित्यपूजायां सत्यां तरुविटपेषु पुष्पं न दृष्टम् ।
ततो हेतोः काप्युद्याने जना वायुमपरागिणं सदोषं न
विदधुः । परागाभावेऽप्यपरागिणं न विदधुरिति विभावना ।
10 क्वचित् 'अपरागवानपि वहन्नशनेः पवनोऽभवत्कचन नोपवने'
इति पाठः ॥ ११ ॥

चरणैस्त्रिभिस्त्रुटितसंघटितै-

व्यहरत्सुखं स्मरहरस्य वृषः ।

पदमुद्रिता नियतमस्य सदा

15 **न हिरण्मयी न समपादि मही ॥ १२ ॥**

स्मरहरस्य वृषो धर्मः सुखेन व्यहरत् । अत्र हेतुः । त्रिभिः
पादैः पूर्वं विच्छिन्नैरद्य संघटितैश्चतुष्पाद् धर्माभूदित्यर्थः ।
नूनमस्य वृषस्य चतुर्भिः पादैः कृतमुद्रत्वाद्भूः सुवर्णमयी संपन्ना ।
खनिष्ठानेषु भूः सुवर्णमजीजनदित्यर्थः । हरवृषो यत्र संच-
20 रति तत्र जातरूपं जायत इत्यागमः ॥ १२ ॥

यशसा भृता जलधिविष्णुपदे

शशिमंडलं न न बभूव मही ।

न च कलंकवन्न च विधुन्तुदवत्

कलिता पुनः क्वचिदवापि पदम् ॥ १३ ॥

- 5 तदीयेन यशसा भृता भूः समुद्राकाशे चन्द्रमंडलं न
नाभूत् । अपि त्वभूदेवेत्यर्थः । कलंकेन राज्ञा यथा पद-
मवापि तथा कलिकालेन कापि न स्थानं लब्धम् । अयमर्थः ।
समुद्र एवाकाशं तत्र यशश्शुभ्रा भूमिरेव चन्द्रोभूत् । चन्द्रस्य
कलंकोऽस्ति राज्ञश्च बाधते । यशश्शुभ्रमभूमण्डलस्य तु कलि-
10 कलंकराज्जरूपो नामौदित्यर्थः ॥ १३ ॥

सुरमंदिरैर्दिशि विदिश्युदितं

मरुतां पतिर्मखमहौषवसत् ।

अमरावतौ किमपि कालवशाद्-

व्यथिताभवत् पथिकयोषिदिव ॥ १४ ॥

- 15 देवगृहैः सर्वदिचूलसितम् । यज्ञभूमिष्विन्द्रोऽवसत् । काल-
बलादमरावतौ पथिकस्त्रीव किमपि व्यथिताभवत् ॥ १४ ॥

उपनिन्यिरे शिखरिणो लघुतां

पृथुना न तां न च शतक्रतुना ।

अनयन्त यां सुकृतिनः पुरुषा

- 20 दृषदुद्धृतेः सुरगृहस्य कृते ॥ १५ ॥

पृथु नाम्ना राज्ञा इन्द्रेण च शैलास्तां लघुतां न नीता
देवगृहनिर्माणार्थं पाषाणोद्धरणज्जनाः पर्वतान्यथा लघुताम-
नयन् ॥ १५ ॥

शकलीकृताः सुरगृहेषु शिला-

5 स्समिधां कृते विदलितास्तरवः ।

न च धातवो न ययुरुद्धरणं

क्षितिमित्यगात् क इव न क्षितिभृत् ॥ १६ ॥

देवगृहकृते पर्वतानां शिलाः खण्डिताः । समिदर्थे च
वृक्षा दारिताः । चित्रार्थं गौरिकादय उद्धृतास्ततः सर्वे
10 पर्वताः क्षितिमल्पप्रमाणत्वं प्रापुः ॥ १६ ॥

मुहुरीतयः प्रविविशुर्न भुवं

भुवनान्तरे क्वचिदिवात्तपदाः ।

यदि वा क ता विरचयन्तु पदं

परिपूरिताः सुकृतिभिर्हि दिशः ॥ १७ ॥

15 ईतयोऽतिवृष्ट्यादयो भुवनं न प्राविशन् । अतः संभाव्यते
कायन्यस्मिन् भुवने कृतास्यदाः । अथवा नैतत् । कस्मिन् भुवने
ईतयः पदं कुर्वन्तु । हिर्यस्मादर्थे । तदीयाभिः सुकृतिभिः
शोभनैः कर्मभिर्दि - - - ताः ॥ १७ ॥

अतिवृष्टयो वरधिरे सजलै-

20 नयनैः परं रिपुकुरङ्गदृशाम् ।

अनवग्रहं खमपि सत्पुरुषाः

प्रतिपेदिरे सततभाग्यमयाः ॥ १८ ॥

रिपुस्त्रीणां सवाप्यैर्नैरतिवृष्टयः प्रवृद्धाः । नित्यभाग्य-
मयाः सत्पुरुषाः खमाकाशमनवग्रहमवृष्टिप्रतिबन्धं प्रतिपन्नाः ।
5 अविद्यमानो नवो ग्रहो नेयत्येन विमर्शो यत्र तत् खं संवि-
त्स्वभावं प्रतिपन्नाः । नवग्रहरहितं खमिति विरोधः ॥ १८ ॥

क्षितिग्रहीत् कमपि दार्ढ्यगुणं

क्वचिदाखवो न खलु चख्नुरमूम् ।

अत एव तां परमनिर्विवरां

10 विपदां गणा न परितस्तगिरे ॥ १९ ॥

वक्तुमशक्यं दार्ढ्यगुणं भूर्लभे । मूषका भूमिं न खनितवन्तः ।
अत इव विच्छिद्रां भूमिमापदां गणा नैवाच्छादयन् ॥ १९ ॥

शुकवाहने सतततृप्तिमये

न दधुः शुकाः क्वचन शालिभयम् ।

15 क्रतुधूमतो दिशि दिशि प्रसृता-

दुपलेभिरे न विषयं शलभाः ॥ २० ॥

शुका वक्त्रिवाहा इत्यागमः । शुकवाहनेऽनले नित्यदृष्टे
इव शुकाः शालीनां भयं न दत्तवन्तः । तेषां पावकतप्तौ

सत्यां तप्तत्वात् । सर्वदिक्षु विमारिणो यज्ञधूमाद्धेतोरिव
शूलभा आश्रयं न लब्धवन्तः ॥ २० ॥

न निवेशितैर्गिरिगुहासु तथा

न तथा पुरं पितृपतेः प्रहितैः ।

5 चरणाग्रगैर्नृपतिभिर्नृपतिः

स यथा प्रजाः सुखवतीरकरोत् ॥ २१ ॥

प्रणमितै राजभिस्तु राजा प्रजाः सुखिता यथाऽकरोत्तथा-
ऽद्रिगुहासु प्रवेशितैस्तैर्नाकरोत्तथा न च यमपुरं विवृष्टै राज-
भिरकरोत् । पलायितानां पुनरुदयाशंकया मारितानां ये
10 मुक्तास्तेषामुदयाशंकयेति भावः ॥ २१ ॥

उपयोगवान्यदि रणार्थमभूत्

स्वयमेव तन्मखमहीषवसत् ।

भुजयोर्बलादभयदानपतिं

दनुजागमे तमनयन्मघवा ॥ २२ ॥

15 इन्द्रो *वासुदेवस्य रणार्थमुपयोगी यद्याभीक्ष्णं दन्द्र-
स्तदीययज्ञभूमिषु स्वयमेवावसत् । दानवयुद्धागमे तमिन्द्रो
भुजबलेनाभयदातारमनयत् ॥ २२ ॥

* This is the text as emended in the margin; the original was स वासुदेवो दैत्यसमं शक्रस्योपयोगी, etc

व्यसनैरसावतितरां मलिनै-

रपि सप्तभिः स्वयमधो विहितैः ।

----- सकलदिग्विजयं

तुरगैरिव स्वकुलपूर्वपुमान् ॥ २३ ॥

- 5 अत्यन्तमलिनैः सप्तभिः --- रघोषदिग्गः क्रान्तवान्यथाधः-
कृतैः सप्तभिरश्वैः स्ववंशपूर्वपुरुषःसू --- ॥ २३ ॥

----- भुजबलेन दधौ ।

चरितार्थतां पुनरगादसुधा

- 10 यदनेन सा वसुमती विदधे ॥ २४ ॥

स राजा भुजबलेन यद्भूमिं धृतवांस्ततो हे-----
त्यर्थोऽभूत् । चितिं बिभ्रतीति व्युत्पत्तिर्दृष्टाभूत् । भूर्वसुधा
सत्यार्थतामधात् । यतोनेन राज्ञा भूर्वसुधरा वसुमती सतेजाः
सधना च कृता । स राजैव भूमेर्वसुभूत आसीदित्यर्थः । --

- 15 चरितार्थतां भूर्वसुधान्वभूदित्यर्थः ॥ २४ ॥

नृहरिः स्वयं -----

- जहुर्मदं तदिति दिक्करिणः ।

अनहंकृतिं फणिपतिं व्यदधात्

कलिपन्नगे ----- ॥ २५ ॥

— — — — — मध्ये हरिः मिहो नामामौ हरि-
 स्तरुणमिहश्च स भूमिं यदधात्तत एव — — — — —
 मुदहनाधिकारहरणादिति भावः । मिहे च सति गजा मदं
 त्यजन्ति । शेषमनहंक्रांतिं त्यक्ताहंकारमकरोत् । कलिसर्पे गह-
 त्मतां राजा यदवहत् । भुवो दुरितभारं यत्प्रवारयत् ।
 अलघूभवन्तीं भुवं वहन् शेषो निरहंकारो जात इत्यर्थः ।
 फणिमारणात् फणिपतिस्तुष्यतीति चित्रम् ॥ २५ ॥

भुवमुद्धरन्नजनयन्नरकं

प्रममाथ तं मधुरिपुश्च पुनः ।

10 स पुनस्तथा त्रिदिवमर्जितवान्

क्रतुभिश्च तं सुवसतामनयत् ॥ २६ ॥

भूमिसुद्धरन्नधुरिपुर्नरकमुदपादयत् । ततः स एव नरकं
 हतवान् । स राजा पुनर्भूमिसुद्धरन्निरूपद्रवां कुर्वेस्तथा स्वर्ग-
 मर्जितवान् । स तं स्वर्गं यज्ञैः सुवसतां यथानयत् । यज्ञदत्ता
 15 देवाः स्वर्गे सुखमाप्नोत्यर्थः ॥ २६ ॥

अतिसंकुचन्नवयवैः सकलै-

र्यमधः स्थितो वहति कूर्मपतिः ।

उपरिस्थितः सकलभूमिभृतां

स विकस्वरः क्षितिभरं तमधात् ॥ २७ ॥

भूमेरधः स्थितः कूर्मराजोऽङ्गैः संकुचन्यं वहति तमेवायं
राज्ञामुपरि स्थितः सराज्याङ्गैर्विकसितोऽवहत् ॥ २७ ॥

अवहेलया यदकरोत्स किम-

प्यतिदुष्करं किमपि येन विधेः ।

5 तत एव न ध्रुवमपच(प)या

तदधिष्ठितां स वसुधामरिशत् ॥ २८ ॥

सोऽयन्नेन यत्समपादयत्तद्विधिनापि कर्तुं यदुष्करम् ।
अत एव लज्जया । ध्रुवं संभावनायाम् । स विधिस्तदाश्रितां
भुवं नारिश्चद्विंसितवान् । रिश हिंसार्थस्तौदादिकः । अविश-
10 दिति पाठश्चिन्त्यः ॥ २८ ॥

यदि वा शुचेरजनि यस्य कुले

स विधेर्गतिः परिभवेष्टभवत् ।

भगवान्स्मरन्नुपकृतिं न तत-

स्तदलंघताः परिबभूव दिशः ॥ २९ ॥

15 यदि वेति पूर्वसंभावनायाः पक्षान्तरमाह । यस्य स कुले
जातः स चाहमानो विधेरसुरैः परिभवे शरणमभूत् ।
तस्माद्धेतोरुपकारं स्मरन्भगवान्विधिरुद्धूषिता दिशो नाव्य-
थयत् ॥ २९ ॥

सोध्वर (V, 38?) इत्यन्तं कुलकम् ।

चरणेऽपि यो मदनुगं व्यथये-

न्मुखभंजनं सुकरमस्य मया ।

इति ते कथां स्मरति धर्मपरां

न कलिर्मुखं कचन दर्शयते ॥ ३० ॥

- 5 यो मत्सेवकं पादेऽपि व्यथयेदस्य मुखभंगो मया क्रियते ।
इमां धर्मनिष्ठां तव प्रतिज्ञां यत्स्मरति ततो नूनं कलिर्मुखं
कापि न दर्शयते । कलिना हि त्वदाश्रितो धर्मः पादे
खंडित इति भावः ॥ ३० ॥

तव पादयोरपस्तृताः सविधा-

- 10 द्वयविह्वला ध्रुवमभाग्यशतैः ।

अतिरोहिताः कमलया क्षितिपाः

प्रतिजज्ञिरे तदनु पस्पशिरे ॥ ३१ ॥

- तव पादयोः समीपान्नष्टा अत एव भीता अभाग्यशतै-
र्लक्ष्म्यानाच्छादिता राजानो नूनं परिज्ञाता यत्समनन्तरमेव
15 पस्पशिरे बाधिताः । अपस्तृतैः भयविह्वलैरिति तृतीयावङ्ग-
वचनान्तः पाठश्चिन्त्यः । पस्पृशिरे स्पृशेच्च पाठो विमृश्यः ।
पस्पशिरे — — — — — धने इत्यस्य लिटि रूपम् । राज-
द्रुहं परिज्ञाय लोका बाधन्ते । यद्वा* त्वं तस्यापि अभाग्यानि
न सहसे इत्यतो भीतैः तत्सेवात्यागिनः परिज्ञाता यदतः

* This alternative interpretation is given in a marginal note

सृष्टाः । तद्वैरिणामभाग्यान्यापतितानीत्यर्थः । अस्यां व्याख्यायां
दुष्पाठो न कश्चित् ॥ ३१ ॥

भविता पुरः सहचरैर्दिषतां

वरिवस्यतां नृप भवच्चरणौ ।

5 इति सूचितं खलु तवैव नखै-

र्यददर्शयन् प्रतिनिधीननुगान् ॥ ३२ ॥

हे नृप त्वत्पादौ शरणीकुर्वतां शत्रूणां सहचरैः पुरो
भा(?)विता भविष्यते इत्येतत्तन्त्रखैरेव सूचितम् । अत्र साध्ये
साधनमाह । भवन्नखाः शत्रूणां प्रतिनिधीन् प्रतिबिम्बसमाज्
10 शत्रूणामनुगानदर्शयन् । भवन्नखेषु निर्मलत्वान्नमन्तो भवद्विषः
प्रतिबिम्बिताः । ते प्रतिबिम्बा भवच्छत्रूणां सहचराः पुरो
वर्तन्ते (इ)त्यर्थः । त्वत्पादसेवकानां सहचरसामग्री भवतीति
भावः ॥ ३२ ॥

न हिमालयो न हिमवत्तनया

15 न हिमद्युतिर्न हिमशैलनदी ।

हिमवत्सखो न हिमाद्रिदृषो

हरहृष्टये तव यशांसि यथा ॥ ३३ ॥

यथा त्वद्यशांसि हरस्य हर्षाय तथा न हिमालयाद्याः ।
भवद्यशोभिर्विश्वस्य पालनादिति भावः ॥ ३३ ॥

हृदयंगमं न जलजन्म विधेर्न

मधुद्विषो भुजगतल्परुचिः ।

स्फटिकाचले न च शिवो रमते

तव कीर्तिभिः स यदि सर्वगतः ॥ ३४ ॥

- 5 विधेर्ब्रह्मणः पुण्डरीकं हृद्यं न तथा ध्रुवं भवति । विष्णोश्च
तथा शेषशय्याभिलाषो न भवति । कैलासगौले च तथा हरो
न भवति । यदि यस्मादर्थे । स ब्रह्मा हरिर्हरो वा तव
कीर्तिभिर्हेतुभिः सर्वगतो रमते । तत्कीर्त्तिः सर्वगता द्रष्टुं
स भ्रमतीति पुण्डरीकादौ न रमते इत्यर्थः ॥ ३४ ॥

- 10 पृथिवी त्वया फलवती विहिता

क्रतुभिर्हि ते जलमुचो जलदाः ।

उपतिष्ठते हविरिनं ज्वलना-

त्परिपूर्यते द्विजपतिश्च ततः ॥ ३५ ॥

- त्वया भूर्बुध्न्योः फला सम्पादिता यतो यज्ञैर्हेतुभिर्मेषा वृष्टि-
15 ममुचन् । हविराहुतिरिनमादित्यमुपतिष्ठते । अग्नौ प्रास्ता-
हुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते इत्यागमात् । ततश्चन्द्रश्च पूर्णो
भवति ॥ ३५ ॥

उदरं भरिस्तव शिखी यजनैः

(सु)हृदः सुखान्मृदु वहत्यनलः ।

न विभाति खं न निगमध्वनिना

यजमानता न भवता न धृता ॥ ३६ ॥

तत्कर्तुं — — — — — दरं विभर्त्ति पोषयति ।
 — — — — — ग्रेः सुखाद् — — — — — मशब्देन खं
 5 न न — — — तेपि तु शोभते । भवता यजमानभावो न न
 धृतः ॥ ३६ ॥

इ — — — — — जग

— — — — — स्त्रिजगती प्रकृतीः ।

यदि ता भवानुपकरोति सदा

10 तदलं सुरैर्भवत एव नमः ॥ ३७ ॥

त्रिजगत्याः प्रकृतीरूपादानकारणानि सतीर्विभोः परमे-
 श्वरस्य मूर्त्तीर्भूम्यादिका जगदुक्ता इ — — — — —
 — — भवान्नित्यं यदुपकरोति तत्किं सुरैः । न तान्नमस्यामः ।
 तुभ्यमेव नमः ॥ ३७ ॥

15 — — — — — रितै-

र्विनमन्मुखश्चिरमभूद्वचनैः ।

न परीक्ष्यतां कथमसौ पृथिवी-

परिपा — — — — — ॥ ३८ ॥

— — — — — कम् ।

ब्राह्मणप्रोक्तैः पूर्वैर्वचनैः स्तवै — — — — —

तां यां पालयित्वा यमः श्रुतिं श्रवणमेति ॥ ३८ ॥

बहुभिगिरः किमतिविस्तरै-

- - - नशे यममुना प्रमदम् ।

५ परितापिता दुहितृवेदनया

न तमन्वभूजयिनि दाशरथौ ॥ ३९ ॥

— — — — — क्तेन किम् । अमुना राज्ञा हेतुना भूयं हर्षं
प्रापत्तं भूर्जेतर्यपि रामे सति न प्रापत् ॥ रघुःपति — — —
तेन रामेण भुवः कथं न महान् हर्ष इत्याह । दुहितुः

10 सीताया वेदनया संतापिता ॥ ३९ ॥

पुरुहूतता(मति)शयानममुं

विजयश्रिया स्वभुजसंभृतया ।

समुपस्थितः प्रणयदूततया

मधुरेकदा न(रप)तेः सचिवः ॥ ४० ॥

15 भुजबलजितया विजयलक्ष्म्या पुरुहूततामिन्द्रैश्वर्यं जित-
वन्तं राजानं कदाचि — — सामन्तो वसन्तस्तस्य सुखार्थं दूत-
भावेनोपस्थितः । सुखं त्वयानुभूयतामितीव प्रेरयितुं (व)सन्तः
प्राप्त इत्यर्थः ॥ ४० ॥

प्रतियोगिभिर्मनसि मानभृतां

20 भयदायिभिः पथि पथि भ्रमताम् ।

(म)लयानिलैः सममिवानुचरै-

दिशमुत्तरामविशदुष्णकरः ॥ ४१ ॥

मानिनां प्रतिभटैर्माननिवारिभिरित्यर्थः । पांथानां चित्ते
भयप्रदैर्मलयवायुभिरनुचरैरिव सह सूर्य उत्तरं दिशं

5 प्रविष्टः ॥ ४१ ॥

(शिशि?)रक्षणे पृथुरभूद्रजनौ

मधुसौहृदात् किमपि कार्श्यमगात् ।

दिवसोष्मणि स्पृशति कर्कश(तां)

द्रवदङ्गका अमपयोभिरिव ॥ ४२ ॥

10 शिशिरे रात्रिर्दीर्घाभूत् । वसन्तसंगादत्यर्थं तनुत्वम-
गच्छत् । अत्र हेतुः संभाव्यते । दिनतापे कार्कश्यं दधति
घर्मजलेर्द्रवदङ्गीव ॥ ४१ ॥

मलयानिलात् पथिकनिश्चसितं

(मलयानिलः पथिकनिश्च)सितात् ।

15 इतरेतरं प्रवृधे सुतरां

घनतोऽर्णवा घन इवार्णवतः ॥ ४३ ॥

— — — — — था

मलयवायोः पान्थनिश्वासस्तस्माच्च स वृद्धिं प्राप्नोति । इतरेतर-
मिति पञ्चम्यर्थेऽव्ययम् ॥ ४३ ॥

----- - ददृशे ।

कमपि ध्वनिं ध्वनितुमन्यभृताः

समु ----- ॥ ४४ ॥

5

घर्मजलं स्तिमितं व्यापकं मितं म-----

----- ॥ ४४ ॥*

योय तुहितम् । पूर्वं हिमं ततो रोध्रेणुः । आदौ पान्थाः

पश्चा ----- काश्यं प्रापुर्वसन्ते प्रथ ----- ॥

10 कृशरात्रयो (विकस)दिन्दुरुचो

गलितांबुदाः प्रसृतगन्धवहाः ।

प्रलपत्किपाः (?त्पिकाः) प्रमुदितभ्रमरा

मधुवासराः कमिव नामदयन् ॥

कृशरात्र्यादिविशिष्टा वसन्तदिवसाः सर्वं लोकमतोषयन् ॥

15 हरवैरिणा धनुषि कुंडलिते

क्रियते न यदि कृतटाङ्गतिनि ।

* After this there comes a lacuna extending to about 3 or 4 verses, in consequence of the breaking off of the lower part of a leaf.

नवकेसरे सरसमारसता

मधुमेन तत्त्वरितमेव कृतम् ॥

भयावहटांकारे धनुषि कुंडलीकृते हरवैरिणा कामेन न
यत् क्रियते कर्तुं न शक्यते तद्गुह्येण नववकुले रसेन
5 गायता तूर्णमेव कृतम् ॥

अरुदन्नु किं किमुत पर्यहस-

न्नरटन्नु किं किमुत वान्वनयन् ।

प्रसृतस्वरा विदधिरे किमिति

प्रतिपेदिरे विरहिभिर्न पिकाः ॥

10 प्रसृतोऽविच्छिन्नः स्वरो येषां ते पिका विरहिभिर्न
निश्चिताः । पिकानां - - ने कारणं न निश्चयेन लब्धमित्यर्थः ।
तदेवाह । किं रुदितवन्तः पिकाः किं चक्रुः किं हसितवन्तः
किमर - - - वानुनौतवन्तः । रुदादीनां लडन्तत्वं युक्तमतो
लटाद्यन्तत्वं चिन्त्यम् ॥

15 न चुचुम्बिरे न मधुपैः कलिकाः

परिरेभिरे न तरुभिर्न लताः ।

विजगाहिरे न (दिवसैर्न?) दिशो

न विलोभिरे न विरहिण्यसवः ॥

भ्रमरादिभिः कलिकादीनां चुम्बनादिकं न न कृतमपि

-- तम् । कलिकाभ्रमरादीनां स्त्रीपुंसव्यवहारसमारोपाच्चुम्ब-
नाद्युक्तिसंगतिः ॥

अपि वासरे (प्रम)दनाहृदये-

षवकाशहृत्प्रणयरोषरुजाम् ।

5 अतिमुक्तकः कुसुमकान्तिभरा-

जितवान् विधोस्तु -- खत्वपदम् ॥

अतियुक्तकनामा तरुश्वन्द्रस्याकामसख्यमजयत् । यत्पुष्प-
शोभातिशया -- स्त्रीचित्तेषुप्रणयरोषरोगाणां दिवाप्यवकाश-
हरः । चन्द्रो हि रज -- -- -- -- -- ॥

10 -- -- -- नौमधुपगीत विधौ

सुरभिश्चित्रो मणिमयी रशना ।

ज -----

---- गोपिकवधूपरिषत् ॥

भ्रमराणां -----

15 कामस्य कटके जयघोष ----- *

इति पृथ्वीराजविजये तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

* The concluding portion of this canto together with the first few verses of the next are wanting, two leaves of the original MS. being entirely missing.

चतुर्थः सर्गः ॥



*

- - हा मदमृतोष्यवमन्यमाने ।

देवः स तार्क्ष्य इव वाजिनि वासुदेवो

हर्तव्यमृत्युमुखसंमुखदुष्टसत्त्वः ॥

- 5 स वासुदेवस्तेन भ्रात्रान्वितो निरगात् । कौदृशः । सुखा
सुखावहा गतिर्यस्य तस्मिन्नश्वे निषण्ण — स्ति नो जित-
वति । हर्तव्यानि मृत्युमुखानि संमुखं दुष्टसत्त्वानि येन
सः । मृत्युमुखानीति दुष्टसत्त्व — — — पः । यथा तार्क्ष्य
गरुडे निविष्टो वासुदेवो नारायणो निरगात् । नागाः
10 भुजगाः । दुष्टसत्त्वा दैत्याः । शोभना — तिर्थस्येति च ॥

एतन्न कौतुकविधायकमादिदेवो

यद्यद्रिवासरुचिरेति किरातलीलाम् ।

चित्रीयते त्ववनधीरपि वासुदेवो

लीलाकिरातसरणिं स यदाललम्बे ॥

- 15 अद्रिवासे रुचिर्यस्य स आदिदेवो गिरिशो यत्किरात-
रूपमवहत्तन्नाश्चर्यम् । अद्रिस्थानां किरातरूपग्रहणोपपत्तेः ।

इदं तु चित्रीयते । आश्चर्यं भवति । यन्न वने धीर्यस्य ।
अवने रक्षणे धीर्यस्येति च । स राजा लीलया किरातल-
मग्रहीत् । चित्रट् आश्चर्यं इति कट् ॥

सर्वा --- मृगजातिभिरैकमत्यं

5 निर्माय मानमवधीर्यं पशुत्ववृत्त्या ।

अग्रे विस्मृष्टमभयार्थितयेव रंह-

----- महरन्नुपतेस्तुरंगः ॥

पशुभावेन मानं त्यक्त्वा साम्यत्वं कृत्वा सर्वाभिर्मुगजाति-
भिरभया - - - - - प्रहितं सर्वस्वभूतं वेगं राजाश्चोऽहरदित्यु-
10 त्रेचा । अयमर्थः । राजाश्चं दृष्ट्वा मृगाणां वेगो नष्टः ।
- - - - - हते । अभयाभिलाषाद्राजाश्चस्य मृगैः स्ववेगो
दत्त इत्यर्थः । अवहदित्यार्थः पाठः ॥

स प्राविशद्वन - - - - -

- - - केषु दधतीं सुखितोपविष्टम् ।

15 उन्दालकाय परिपूर्णफलैर्विमुक्तैः

प्रा - - - - - यूथम् ॥

वनदेवतानां संगीतकेषु सत्सु निश्चलं सुखितया उपविष्टं
मृगकुल - - - - - छः । अतः संभाव्यते । प्राणानां
संपूर्णफलत्वाद् उन्दालकाय प्रसाद - - - - - थं त्यक्तैः प्र - - - - -
20 प्राणो हि निश्चलो भवति ॥

आकस्मिकं निपतितं परमान्नपात्रे

पाषाणखण्डमिव - - - - - ।

- - - - - एविघ्नमवाप्य वाजि-

कोलाहलं मृगकुलानि सुखान्यधुन्वन् ॥

5 - - - - - *

त्रा मृगाणां प्रसाद इव हत इत्यर्थः ॥

नीलोत्पलभ्रमवशाद्भ्रमतामलीना-

मारादनु^१दितगतागतया दृश्यैव ।

उत्थानविघ्नजननीं श्रवणामृतौघे

10 मंक्ता स्थितां श्रवणशक्तिमिवोद्धरन्तः ॥

दृष्टौ नीलोत्पलमिति भ्रमतां भ्रमराणां गतागतानु-
वादिन्या गीतप्रियत्वादिति भावः । दृश्यैव श्रुतिशक्तिमिवो-
द्धरन्तः । श्रवणामृतप्रवाहे निमज्ज्य स्थितामुत्थाने विघ्नं कुर्व-
तीम् । आकर्णनामृते मग्नां श्रुतिशक्तिसुद्धर्तुमिव दृष्टिं व्यापा-
15 रयन्तीत्यर्थः । यश्च घटादिकं कृपादिकादुद्धरति स गता-
गतानि करोति ॥

तालोल्लभैः खुरपुटाहननेन भूमे-

ग्रैवेयगुञ्जितगुणेन च वाहनानाम् ।

वीक्ष्यास्यमात्रमपि किंपुरुषभ्रमेण

गन्तुं व्यलंबिषत मन्दभियः कुरंगाः ॥

भुवः खुरघातेन तालोच्चरणैरश्वानां ग्रीवालंकरणशब्देन
चाश्वानां मुखमात्रदर्शने । गीतप्रियत्वेन दृशोनन्यव्यापारत्वं
5 हेतुः । गायतां मुखानि लोकाः पश्यन्तीति वस्तुस्थितिः ।
मुखमात्रदर्शनेन किन्नरभ्रान्त्या मन्दभया इव मृगाः ॥

नानाविधश्रुतिसुखाहृतशब्दसार-

सारंगमांसरसनाभ्यसनानुभावात् ।

संक्रान्तगीतसमया इव सर्वगात्रे-

10 छारेभिरे किमपि कर्णसुखं शबर्यः ॥

शबर्यः किरातवध्वः कर्णसुखं प्रारब्धवत्यः । नानाविधः
श्रुतिसुखकारी आहृतः श्रुतः शब्दसारो यैस्ते सारङ्गमृगास्तेषां
मांसस्य रसनं ग्रसनं तदभ्यासातिशयात्संक्रान्तः परिणतो
गीतसमयो यामां ता इत्युत्प्रेक्षा ॥

15 व्याधांगनाभिरथवा वनदेवताभि-

र्यज्ञीयते किमपि तच्चरितं मदीयम् ।

किं हेतुकर्तृपदवीमिदमेति मृत्यो-

रित्येष भूपति(रदाद)भयं मृगेभ्यः ॥

किरातस्त्रीभिर्वनदेवताभिश्च किमपि लोकोत्तरं तत्
20 प्रसिद्धं मदीयं च - - - - - तन्मृत्योर्हेतुकर्तृत्वं किमेतीति स

मृगेभ्योऽदादभयम् । मङ्गीतश्रवणश्रद्धयानपसरतां - - - - -
रणद्वारं स भूदित्यभयं ददावित्यर्थः ॥

प्राणावसानसमयेष्यप - - माने
दत्ता - - - - - ।

5 - - - - -

- - - - - ॥*

बुद्ध्या रदैः कमलपत्रधिया च जिह्वाम् ।
दूरावनम्रवदनोन्नमनक्रमात्त-

10 मातृस्तनान् न स जघान वराहशावान् ॥

दर्भांकुरेषु मृणालभ्रान्त्या हेतुभूतया । दर्भांकुराञ्
जिह्वया लिहतो जिह्वायां पद्मपत्रभ्रान्त्या । जिह्वां दशनै-
र्लिहतः दूरावनम्रैर्वदनैरुन्नमनात् क्रमेणात्ताः पीता मातृस्तना
यैस्तान्वराहपोतान्स नावधीत् ॥

15 नैसर्गिकाविचलवर्णगुणस्य यत्न-

निघ्नन्नवर्णगुणसंगमसुत्यजेन ।

दिग्वाससेव कृशशास्त्रमुखेन देवो

बाधां द्विजस्य शिखिनो विशिखेन नैच्छत् ॥

स्वाभाविकोऽविचलः स्थिरो वर्णगुणो नीलपीतादिर्यस्य
 द्विजस्य मयूरादेः पक्षिणो राजा बाधां भाकरोत् । केन ।
 यत्नेन निष्पन्नो निष्पादितो यो वर्णा गुणसंगमस्तेन हेतुना
 सुत्यजेन विशिखेन । विगलिता लुञ्चिता शिखा केशा यस्य
 5 तेन । शिखिनश्चूडावतो द्विजस्य कश्चिद्बाधां नेच्छति । अवि-
 चलो वर्णा ब्राह्मणत्वं गुणः पाठादिश्च यस्य । यत्नेन निष्पन्नो
 वर्णगुणः पाठादिस्तेन सुत्यजः । कृशं शास्त्रं यस्य तन्मुखं यस्य ।
 अल्पशास्त्रज्ञेनेत्यर्थः ॥

यत्पुण्डरीकमवधीत्तत एव चन्द्रा-

10 पीडोयमित्यधिजगाम यशः स राजा ।

दूरं गतस्तु मृगयाव्यसनेन चित्रं

कादम्बरीं न मनसापि कदाप्यपश्यत् ॥

स राजा पुण्डरीकं व्याघ्रं मुनिपुत्रं च यदहिंसीत् ततोऽयं
 राजा चन्द्रापीड इति प्रसिद्धिमाप्तवान् । चन्द्रापीडो राजा
 15 पुण्डरीकं मुनिपुत्रं हतवान् अयं च पुण्डरीकं व्याघ्रं हतवा-
 निति चन्द्रापीड इति प्रसिद्धिं प्रापत् । आखेटकव्यसनेन
 तु दूरं गतोऽपि मनसापि कादम्बरीं मदिरां कादम्बरीं
 नाम स्त्रियं च न लब्धवान् । चन्द्रापीडेन राज्ञा कादम्बरी
 लब्धा । अयं पुनश्चन्द्रापीडोऽपि भवन् कादम्बरीं न लब्ध-
 20 वानित्यर्थः ॥

सुप्तो हरिः कचन भूपतिना गुहा-

----- बभूवे ।

दंष्ट्रानखप्रकरकेसरचन्द्रिकाया-

मुष्माणमात्मन इवाप ----- ॥

5 ----- प्रः सिंहो राज्ञा धनुर्गुण-

टंकारैराहृतः । दंष्ट्रा च नखप्रकराश्च -----

----- जुहुवांबभूवे इति चिन्त्यम् ----- ॥*

----- ।

10 -----

----- माष्टुम् ॥

स्वतंत्रैः स्वेच्छाकल्पितैर्वचनैः स्त्रैरात्मीयैस्तन्त्रवचनैः कर्तृभि-
 दुष्टसत्त्वः सिंहादिरल्पसत्त्वश्च -- षो महतां साम्यं यदि यज्ञी-
 येत । समर्थनायां लिट् । तेन साम्यनयनेन हेतुना स दुष्ट-
 15 सत्वो महद्भ्यो ----- सहते । लभते इति वा पाठः ।
 तथाहि । माणवकत्वेन रूढमसमैः साम्यमेव मलं निवारयितुं
 सिंहं सोऽवधीत् । सिंहो माणवक इति लक्षणाया उदाहरणं
 प्रसिद्धम् । ततो राजैवमिवाचिन्तयत् । अहमपि बाल्ये माण-
 वक एवासम् । अतो मम च सिंहेन साम्यं जातं यत्तन्मम

* A lacuna of some 3 or 4 verses and com.

मलमतस्तन्मार्ष्टुमहं - - - - - मीति सिंहो राज्ञा हतः ।

सिंहे हते सिंहसाम्यं न केचित्कथयन्तीत्यर्थः ॥

प्राप्नोति साधु(रूपमानतया) स्थितोऽपि

प्राणप्रयाणसमयेऽप्युपकारकत्वम् ।

5 श्रुत्वा कदाचन नृपेण हि गौरिवेति

प्राप्तः पुरोऽपि गवयो घृणया न जघ्ने ॥

उपमीयते येन तदुपमानम् । तद्भावेनापि स्थितः साधु-
र्मरणावसरेऽप्युपकारं करोति । तथा हि । यथा गौस्तथा
गवय इति पूर्वं श्रुत्वा पुरः प्राप्तोऽपि गवयो राज्ञा न हतः

10 कारुण्यात् ॥

पञ्चाननोहमभवं न ममाधुनास्ति

तत्पञ्चमं मुखमितीव भयाद्विधात्रा ।

दिङ्नागचक्रमपि पादतले विधातुं

पादाष्टकप्रकटनात्परिपूरितेच्छम् ॥

15 भित्वा गते शरभस्य शरे सुदूरम्

पुष्पांजलिर्गगनतो भुवि यः पपात ।

मन्ये स निर्वृतधिया दिवि राशिचक्र-

मध्यस्थितेन - - - - - ॥

युगलकम् ॥

20 - - - - - महं पञ्चाननः पञ्चसंख्यमुखः सिंहश्च प्राग-

भवम् । अद्य तु मम - - - - - पंचममुखस्य च्छेदात् ।
 अतः पंचाननत्वमनेन गोपितमिति भ - - - - -
 न्तुमिच्छा परिपूरिता यस्य तं कुतः । पादाष्टकनिर्माणात् ।
 तं शर - - - - - द्यः पुष्पांजलिः पपात स नूनं
 5 हरिणा शि - वि - - - - - ॥*

- - - - - तैः शून्यं स्वेच्छया
 गृहीतं वरं वारणानां चक्रवालं यत्र तत् । स्वच्छन्दं चारिणः
 शिखिनो मयूरा वज्रयश्च । यत्र विहरन्तो मृगा यत्र राज्ञा-
 भयदानादिति भावः ॥

10 आखेटिकाव्यसनिनो नृपतेर्विशेषा-

दायासिता इति गतैरतिमान्यभावम् ।

अश्वैरवापि यवसावसरश्चिरेण

सर्पैस्त्वरण्यसुर(ल?)भैः करभा ननन्दुः ॥

अश्वा मया खेदिता इत्याखेटिकासक्तस्य राज्ञोत्यर्थं
 15 मान्यतां गतैरश्वैर्यवसेऽशनेऽवसरश्चिरेण प्राप्तः । वनसुलभैः सर्पै-
 र्हेतुभिरुद्धा ननन्दुः । उद्धाणां सर्पाश्नत्वात् ॥

नित्यानिमेषनयनत्वमयं विपाकं

दुष्कर्मणां करभदर्शनतो विदित्वा ।

पाणी पिधानपदवीमुपनीय काश्चिद्
द्रष्टुं नरेन्द्रमपि नापुररण्यदेव्यः ॥

नित्यं यदनिमेषाक्षत्वं तद्रूपं पापमुद्गर्शनान्मत्वा प्रथम-
मस्माभिः करभो नूनं दृष्टो यतो निर्निमेषत्वमच्छां जात-
5 मन्यथाक्षिनिमेषसुखं लभेत । उद्गोऽदर्शनोऽय इति प्रसिद्धिः ।
अतो हस्तौ दृष्टेः पिधानत्वं नीत्वा वनदेवता राजानमपि
द्रष्टुं न प्रापुः ॥

वामेतरेण नयनेन च बाहुना च
कृतैकमत्यमिव नित्यमपि स्फुरद्भ्याम् ।

10 राजा निरुद्धनगरीगमनोद्यमोऽथ
प्रासादमुन्नतमकारयदप्यरण्यम् ॥

सामत्यमिव कृत्वाऽनवरतमेव कम्पमानाभ्यां दक्षिणाभ्यां
बाहुनेत्राभ्यामिव निरुद्धनगरीगमनोद्यमो यस्य स राजा वने
प्रासादमकारयत् । सुनिमित्तदर्शनात्तेन वने प्रासादः कृत
15 इत्यर्थः ॥

इन्द्रः करोति मम किं सति वासुदेवे
मुंचा - - - - तमवश्यममुष्य भाग्यैः ।
भावौ वनेऽपि लवणांबुनिधिर्ममेति
प्राप्यैशैलसुतमास्पदतामिवाप्तम् ॥

आत्ता मया हरिणजात्यभयप्रतिज्ञा
 क्रौडाकिरातभयमप्यपसारयामि ।
 नस्य तद्विधुमृगस्य नभोवनेऽस्मिन्
 दत्वेति निर्मितमिवातिशयेन तुंगम् ॥

5 वासुदेवे राज्ञि नाराय — — — ति — — — करोत्य — —
 — — — — — वासुदेवस्य भाग्यैर्वनमध्ये — — — — —
 — — — — —
 — — — — — ॥*

10 हिं कल्पते । स्यात्प्रासादो वैजयन्त इत्यमरः ॥

स्थानस्य तस्य महिमानमसौ विदित्वा
 तत्र प्रवेशमपरस्य निषिध्य देवः ।
 द्विचाण्यहान्यनुबभूव महेभरामा-
 वैधव्यभीतिभिषणं मृगयाविनोदम् ॥

15 तस्य प्र(?)प्रा)सादस्य माहात्म्यं ज्ञात्वाऽन्यस्य तत्र प्रवेशं
 रुद्ध्वा स राजा महेभरामाणां हस्तिनीनां वैधव्यभीतेर्भिषणं
 निवारकमाखेटकं व्यधात् । एकाक्येव वने सोऽवसदित्यर्थः ॥

मध्याह्नमात्रमतिवाह्य मृगेन्द्रमुक्त-
 मुक्तावलीसिकतिलासु वनस्थलीषु ।
 स प्राविशद्वलवेश्म तुषारशैल-
 भ्रान्त्येव शीतलतया विहिताधिवासम् ॥

5 सिंहमुक्तमुक्तासहितासु वनभूमिषु मध्याह्नमतिवाह्य स
 धवलप्रासादं प्रविष्टवान् । हिमाद्रिरिति भ्रान्त्येव शैत्येन
 कृतस्थानम् ।

द्वारान्त एव विनिवारितवारणौघं
 घर्मांबुशेकरकरम्बितहारदामा ।

10 स्वाम्यन्तराश्रयणदूषणहीनभाग्य-
 मात्रानुगः स शयनीयगृहं विवेश ॥

घर्मांबुमिश्रितहारमौक्तिकः स द्वारान्त एव निरुद्धहस्तिकं
 शय्यागृहं प्राविशत् । स्वाम्यन्तराश्रयणेन दूषणं निन्दा तेन
 हीनानि भाग्यमात्राण्येवानुगा वस्य सः ॥ चा — — घमिति वा

15 पाठः ॥

इतः प्रभृति तं वीक्ष्य भूपतिरित्यन्तं (p. 106, l. 6) कुलकम् ॥

उद्दिग्गमत्यवनतादनमध्यतल्पा-
 दारुह्य तुङ्गतममास्यदमाप्तनिद्रम् ।
 नारायणं स्वयमिवैक्षत सेव्यमानं
 20 गूढं श्रिया स्वशयनीयगतं कथंचित् ॥

अश्विवासेनोद्विग्नमतोत्यवनताज्जलमध्यशयनात् प्रासादं
आरुह्य लब्धनिद्रं स्वयं नारायणं गूढमलक्ष्या लक्ष्म्या सेव्य-
मानमिवेत्युत्प्रेक्षा । कंचित्पुरुषं स दृष्टवान् ॥

आसूचिताम्बुधरजङ्गमचन्द्रशाला-

5 वातायनक्षणिकशक्रशरासनाभिः ।

दत्तद्युयानपरिखिन्ननिषण्णशक्र-

शंका - - - - - धितिभिर्विभान्तम् ॥

अम्बुधरा एव जंगमचन्द्रशालावातायनानि तेषु क्षणिक-
मिन्द्रचापं आसूचि - - - - - । तथा युयानेनाकाश-
10 गमनेन - - - खेन्द्रस्य शङ्का दत्ता याभिस्ताभिर्भूषण-
दीप्तिभिः शोभ - - - - - ॥*

- - - - -
- - - - - द्वरं मुक्ताहारं धारयन्तम् । अतः संभाव्यते
कान्त्यातिशयानुरक्तया नाकलक्ष्म्या निजकण्ठादवरुह्य दत्तं
15 तारामयभूषणम् ॥

हारान्तरालगतनायकपद्मराग-

व्याजेन विभ्रतमिवानुगतं ग्रहोद्यैः ॥

केनापि कारणलवेन गतं द्युवीथौ

भूमेरुपा(य)नकृते स्वतनूजमेव ॥

हारमध्यस्थितस्य नायकभूतस्य पद्मरागस्य व्याजेन भूमेः
 खतनूजमेव भौममेव बिभ्रतम् । कौटुशं । संग्रहणं भूमेर्मातुः
 सकाशाद्युमार्गमारूढम् । कुत इत्याह । केनापि कारणं श्रेणो-
 पायनार्थम् । भूस्था दिवो हर्षणार्थं भौम एव विस्मृष्ट इत्यर्थः ॥

५ केयूरयोः कटकयोश्च निवेशितानाम्
 ज्योतिर्भरेरुभयपार्श्वगतैर्मणौनाम् ।
 निर्विघ्नमन्दरगतागतसिद्धिहेतोः
 सन्दर्भयन्तमिव चित्रशिखण्डिभावम् ॥

अंगदयोर्वलययोर्विषययोः स्थापितानां रत्नानां पार्श्वद्वयगै
 10 रश्मिभिर्हेतुभिर्निर्निरोधमाकाशगतागताथं चित्रस्य शिख-
 ण्डिनो मयूरस्य सप्तर्षीणां च भावं प्रकाशयितुम् ॥

संवर्धमानमृगदावरतेर्नरेन्द्रा-
 दुन्मोचनीयमखिलं भवता कुलं मे ।
 भूत्वा द्विधेभ्रमिव कुण्डलकान्तिभङ्गा
 15 कर्णद्वये गुह्यशिखण्डिभृतोच्यमानम् ।

अतिमृगयाव्यसनाद्राज्ञो मद्दंशस्त्वया रक्ष्य — — कुण्डल-
 द्वयस्य व्याजाद्रूपद्वयं ह्य — — — यूरेण कर्णद्व — — —
 — नम् ॥

व्यो(मप्रया)णसुलभश्रमयां मुखेन्द्रं

संस्पृश्य लब्धरसया च सलज्जया च ।

चूडामणेरसितया निशयेव भासा

संबध्यमानदृढनिद्रमुषर्मुखेऽपि ॥

- 5 प्रभातेऽपि (निशया ?) संबध्यमाना दृढा निद्रा यस्मिं-
 स्तमित्युत्प्रेक्षा । विषयिण्या निशाया संभावने विषयमाह ।
 चूडामणेरसितया दौष्ट्येति । निशायाः कथं तत्र निद्रेत्याह ।
 व्योम्नि प्रयाणे सुलभः श्रमः खेदो यया । तथा मुखचन्द्रं
 स्पृष्ट्वा लब्धशृंगाररसया च सलज्जया च । उषर्मुखेपीत्युषः-
- 10 शब्दो रेफान्तः प्रायो न दृष्टः ॥

पुष्पस्रजाममरलोकभुवामुपास-

मारब्धवद्भिरलिभिर्मधुरं ध्वनद्भिः ।

विद्याधनोयमिति कैश्चन मूर्तिमद्भि-

र्विद्याक्षरैरिव समाश्रितयाचिकत्वम् ॥

- 15 नाकोत्पन्नानां पुष्पमालानां सेवां कुर्वद्भिर्यतो मधुरं
 ध्वनद्भिर्भ्रमरैर्हेतुभिरेव विद्याधरो भवतीति हेतुना मूर्त्तै-
 र्विद्याक्षरैरिवाश्रितं याचिकत्वं यस्य ॥

द्रष्टव्यदर्शनमयं फलमाप्तकाल-

माहर्त्तमीक्षणयुगं मनुजेश्वरस्य ।

आनन्दबाष्पजलनामनि सिद्धतीर्थे

शुद्धिं नयन्तमिव तत्समयावतीर्णं ॥

प्राप्तकालं द्रष्टव्यस्य दर्शनरूपं फलं निर्मातुं* तत्कालजाते
हर्षाश्रुतीर्थे राज्ञो नेत्रद्वयं शुद्धिं प्रापयन्तम् । तीर्थस्नानाद्धि
प्राप्तव्यं लभ्यते ॥

तं वीक्ष्य भूपतिरचिन्तयदेष ताव-

दस्वप्नतां व्यभिचरत्यथ शेषशायी ।

देवो यमेतदपि नास्ति स दृश्यते यै-

स्तेषां भवंति न हि दिव्यदृशां विकल्पाः ॥

10 राजैवं (अ)चिन्तयत् । एष पुरुषोऽस्वप्नतां देवत्वं व्यभि-
चरति । देवा हि निद्रारहिताः । अस्वप्नतां व्यभिचरति
सुप्त इति च । देवोऽपि हरिः स्वपतीत्याह । अथ शेषशायी
देवो हरिरयमित्येतदपि नास्ति यतो यैः स हरिर्दृश्यते
तेषां दिव्यदृशां सतां विकल्पः कुतः । सुप्तत्वाच्छेषशायीति

15 विकल्पः ॥

गन्धर्वसिद्धगणकिन्नरलक्षणानि

नात्रासते न च मनुष्यविशेषमेनम् ।

संभावयामि न च वैश्रवणस्य योऽपि

धर्तुं नरः स्पृशति सोऽपि ममोपधानम् ॥

* Emended into निरूपयितुं in the margin

गन्धर्वादीनां लक्षणानि नास्मिन्वर्तन्ते । न चैनं विप्रिष्टं
मनुष्यं संभावयामि अहम् । कुबेरस्य यो वह्नभूतो नरः
सोऽपि मम - - - - - ॥

नागोऽपि नायमुरगत्वविभिन्नयापि

5 मूर्त्या न हि व्य(भिच)रन्त्यहयः फणित्वम् ।

लोभस्वभावमलिना खलु जातिरेषा

रत्नं वराकधनवद्विजहाति नाङ्गात् ॥

उरगत्वात्पुच्छादिमत्वादिभिन्नयापि मूर्त्या मूर्त्यन्तरेणापि
अयं न नागः । तथा हि । नागाः फणां न त्यजन्ति ।
10 हेत्वन्तरमप्याह । एषा जातिर्नागजातिर्लुब्धा स्वांगाद्रत्नं न
त्यजति । अतो वराकधनवदित्युपमा । उरगत्वविभिन्नया
मूर्त्या मूर्त्यन्तरेणापि नागाः फणित्वं न व्यभिचरन्तीति
योज्यम् ॥

विद्याधरत्वमपि यत् किल पादलेप-

15 कौश्लेयकाञ्जनमलत्रयकल्मषं स्यात् ।

तत्तावदस्य न भवत्यथ यः प्रकार-

स्तुर्यस्तदस्य मुखदर्शनतो वधास्ये ॥

पादलेपखड्गाञ्जनमलत्रयेण कल्मषं यद्विद्याधरत्वमपि
स्यात्तदस्य न तावद्भविष्यति अथ यो विद्याधराणां चतुर्थः

प्रकारस्तमयस्य सुखदर्शनात् करिष्यामि निश्चेष्यामि । विचष्टे
इति पाठ आर्षः ॥

ध्यात्वेति सान्ध्यशतपञ्चसगोत्रमास्यं

व्यात्तं मनागवलुलोकयिषोस्तदीयम् ।

5 उर्वीपतेर्गगनसागरकेलिनावा

लीनं तले गुलिकया चरणांगुलीनाम् ॥

सान्ध्यं किञ्चिद्विकसितं यच्छतपत्रं पद्मं तस्य सगोत्रं
सदृशं मनाग् व्यात्तं विकसितं तदीयमास्यं द्रष्टाकाशस्य (?)
राज्ञः पादतले गुलिकया लीनम् । भावे क्तः । गगनमेव
10 सागरस्तत्र केल्यर्थं नावा । गुलिकाविद्याधरा गुलिकाप्रभावा-
द्भोम्युद्भयन्ते ॥

संस्पृष्टमात्रचरणश्च तथा स दध्यौ

भूयोऽपि शेखरमणिः प्रतिभावनानाम् ।

त्वं संदिहानमिव मानस मा स्म भूर्मे

15 विद्याधरोऽयमिति तेऽस्तु दृढा प्रतीतिः ॥

तथा गुलिकया स्पृष्टपाद एव स प्राज्ञानामग्रणीः पुनरपि
चिंतितवान् । हे मानस । त्वं कर्तुं । संदिहानं संदेहवन्मा स्म
भूः । अतोऽयं पुरुषो विद्याधर एवेति निश्चयस्तवास्तु ॥

इन्द्रादिपूजितगरिष्टदृढप्रभाव-

20 बाणावलीप्रसवनर्मदया मदीये ।

अस्मादवश्यमनया वदनेन्दुबिम्बा-

निर्गत्य विंध्य इव केलिगृहे निपेते ॥

इन्द्रादिभिः पूजिता दृढा ये प्रभावास्त एव बाणास्त-
त्पङ्क्ताः प्रसव उत्पादने नर्मदया नद्या विन्ध्यपातिन्या । नर्म-
5 दया हि बाणाः प्रभवन्तीति प्रसिद्धिः । अनया गुलिकयाऽस्य
विद्याधरस्य मुखचन्द्रान्निर्गत्य विन्ध्यसमे मदीये लीलावासे
पतितम् ॥

एवं विकल्पयति भूभुजि भूभुजिष्या-

स्वेच्छाप्रकाश्यरमणीयपदार्थसार्थे ।

10 विद्याधरः स बुबुधे (बुबुधे च व)क्ता-

द्वभ्रंश सिद्धगुलिकेति ससंभ्रमश्च ॥

भूरेव भुजिष्या दासी तथा स्वेच्छया यथेच्छं प्रकाश्या
रमणीयाः पदार्थसार्था यस्य तस्मिन्नाजनि एवं विकल्पान्-
कुर्वति सति विद्याधरः प्रबुद्धः । मन्मुखाङ्गुलिका पतितेति च
15 ज्ञातवान् । संभ्रान्तश्चाभूत् ॥

भूपालतिग्मरुचिपादतिरोहितायां

तस्यां मनः कुमुदशाश्वतचन्द्रिकायाम् ।

कष्टं नभश्चरशशी स्फुटलक्ष्यमाण-

शंकाकलंकमतिपांडु मुखं बभार ॥

20 नभश्चरो विद्याधर एव शशी मुखं स्फुटं लक्ष्यमाणः

शंकाकलंको यस्य तदवहत् । यतोतिपांडुरम् । कष्टं खेदे ।
 कदा । तन्मन एव कुमुदं तस्य नित्यज्योत्स्नायां गुलिकायां
 राजा एव सूर्यस्तत्पादेन च्छादितायां सत्याम् । रविपाद-
 च्छादितायां ज्योत्स्नायां सत्यां चन्द्रो दृश्यकलंकं मुखमग्निम-
 5 भागं वहति ॥

शून्याशयस्य वहतो वदनं विरूपं
 सन्त्येव तस्युरिव नास्य विभूषणानि ।
 विच्छायतामुपगते तुङ्गिनांशुबिम्बे
 व्योम्नि स्थितान्यपि हि नैव विभान्युडूनि ॥

10 शून्यहृदयत्वाद्विच्छायं मुखं दधतोऽस्य वर्त्तमानान्यपि
 भूषणानि न तस्युरिव । चन्द्रे स्नाने व्योमस्थान्युडूनि नैव
 शोभन्ते ॥

उत्तिष्ठता धरणिपालमनेन दृष्ट्वा
 ब्रौडाभरादवनताननतामवाप्य ।
 15 ऊर्ध्वं गतेरवसरः सकलः समाप्त
 इत्याशयेन वसुधेव परीक्ष्यते स्म ॥

शयनादुत्तिष्ठता विद्याधरेण राजानं दृष्ट्वा लज्जाभरा-
 न्नतमुखत्वं प्राप्याकाशगमनार्थं सकलः कालो गत इति भावेन
 भूरीक्षिता ॥

वाक्च्छक्तिमेव सकलामपि तस्य हत्वा

निःसंशयं गुलिकया निरगामि वक्त्रात् ।

वौक्ष्याननं नरपतेरनुरुध्यमानः

किञ्चिद्विवक्षुरपि यन्न किमप्युवाच ॥

- 5 नूनं सर्वामप्युक्तिशक्तिं हत्वा अस्य मुखाद्गुलिकया निर्ग-
लितम् । राज्ञो मुखं दृष्ट्वा सानुरोधः स यतः किञ्चिदपि
वक्तुकामः किमपि नावदत् ॥

मन्येऽनुभूय गुलिकाचिरसाहचर्यं

याता क्व सेति सहसैव गवेषणाय ।

- 10 भाग्यानलप्रसभभस्मकणायमानै-

र्दन्तांशुभिः प्रसृतमस्य मुखाद्विवक्षोः ॥

वक्तुकामस्य विद्याधरस्य मुखाद्दन्तांशुभिः प्रसृतम् । भावे
क्तः । अतः संभाव्यते गुलिकया सह चिरं स्थितिमनुभूय
गुलिकाया गवेषणायान्वेषणार्थं सा गुलिका क्व गतेति ।

- 15 कीदृशैः । भाग्यान्येवानलः तस्य प्रशमेन भस्मकणमदृशैः ।

यद्वा यात्यपेक्षया भवतेः पूर्वकालत्वम् ॥

यो मानमात्रकधनः स किमन्यतोऽपि

स्वप्नेऽपि नाम शृणुयादवमान्यवाक्यम् ।

अभ्यासखंडनभयादिव मानिताया-

- 20 स्तस्यावमानवचनं श्रवणं ह्यपथ्यम् ॥

यो मानैकधनः सोऽन्यस्मादपि स्वप्रेष्यवमानवचनं किं
 शृणुयात् । अपि शब्दात्स्वस्यै(?) स्या)वमानं किं शृणुया-
 दित्यर्थः । तस्य मानिनो मानिभावस्य योऽभ्यासस्तत्त्वण्डन-
 भीत्येवावमानवचःश्रवणं ध्रुवमपथ्यमयुक्तम् ॥

5 पृथ्वीपतिर्यदवनम्रमुखं विवक्षुं

तं वीक्ष्य भीत इव मा स्म मुखादमुष्मात् ।

कार्पण्यगौरमृतदीधितिबिम्बमध्या-

दुल्केव निष्पतदिति त्वरितं बभाषे ॥

श्रवमानश्रवणाभावमुदाहरति । यद्यस्मात्तं विद्याधरं नम्र-
 10 मुखं वक्तुकामं दृष्ट्वा भीत इव स राजा विद्याधरस्य मुखा-
 दमुष्मादनर्हात्कृपणवाक् चंद्रमंडलादुल्केव मास्म पतदित्यत-
 स्त्वरणं भाषितवान् ॥

मान्येन घर्मविवशेन तथान्तरिक्षा-

देत्यान्वभूयत सुषुप्तदशाप्रवेशः ।

15 एषा यथा सकलमंगलकोशमुद्रा

याता न सिद्धगुलिकैव न यामिकत्वम् ॥

मान्येन विद्याधरेण तापाकुलेनाकाशादेत्य स्वापस्तथा-
 नुभूतः यथा मंगलमेव कोशस्तस्य मुद्रेयं सिद्धगुलिकैव
 यामिकत्वं न न प्रापदपि तु प्रापत् । एवं राज्ञा गुलिकायाः
 20 प्रकाशनं कृतम् ॥

एतावतेव नृपतेर्वचनामृतेन

संपूर्णकर्णकुहरस्य नभश्चरस्य ।

राहोर्मुखादिव विनिर्गतमिन्द्रबिम्बं

तत्कालमेव ददृशे मुखमन्यदेव ॥

- 5 इयन्मात्रेणैव राज्ञो वाक्यामृतेन पूरितकर्णस्य विद्याधरस्य
मुखमन्यदेव तत्कालमेव दृष्टम् । अतो राज्ञमुखाच्चिर्गतं
चन्द्रबिम्बमिव ॥

आदाय तां क्षितिपतेश्च सुधांशुलेखा-

मम्भोनिधेरिव स खेचरचक्रवर्ती ।

- 10 प्रारम्भचर्वितविषादविषावतीर्णां

पौडां विधूय परमेश्वरतामवाप ॥

समुद्रादिव राज्ञश्चन्द्रलेखामिव तां गुलिकां गृहीत्वा
प्रथममनुभूताद्विषादविषादवतीर्णां प्रथमदुःखजातां पौडां
त्यक्त्वा स दिविषदग्रणीः परमेश्वरभावं विद्याधरत्वं प्रापत् ।

- 15 विषपौडां त्यक्त्वा परमेश्वरस्य समुद्रादिन्दुलेखामग्रहीत् ॥

राजानमित्यमवदच्च महानुभाव

भावत्कमध्यवसितं मुनयो न विद्युः ।

विद्याधराधिपतितां पतितां पुरस्ता-

यत्पादयोरपि तृणाय न मन्यसे स्म ॥

स राजानमित्यवदत् । हे महानुभाव सुनयो निसृष्टा
अपि तदीयमध्यवसितमौदार्यं न जानीयुः । तत्पादयोरग्रे
पतितामपि विद्याधरचक्रवर्तितां त्वं दृष्ट्वापि नामंस्थाः ॥

दग्धोऽपि लोचनमुखेन महेश्वरस्य

5 कामं विवेश हृदयं पुनरेव कामः ।

एकं तु तस्य भवदाशयमात्रमेव

मन्ये महौमिहिर दुर्यहदुर्ग - - म् ॥

दृष्टिपथेन दग्धोऽपि कामो मन्मथो लोभश्च महेश्वरस्य
चित्तं पुनरविशत् । हे महौमिहिर भूमिसूर्य कामस्यैकमेव
10 त्वच्चित्तमात्रमेव दुर्यहं दुर्गमस्ति । भवच्चित्ते एव कामो न
वर्तत इत्यर्थः ॥

कामानुयातमरिपंचकमन्यदाहु-

स्तस्मिञ्जिते तदपि ते पुरतो वराकम् ।

प्राणाहुतौकृतवतो जलधिं महर्षे-

15 नैकादयः क्व गणनास्पदतामवापुः ॥

जना अन्यदरिपंचकं क्रोधादिकं कामानुयातं काममनु-
सरदाहुः । क्रोधादीनामग्रणीः काम इत्यर्थः । तस्मिन्कामे-
ऽभिलाषे जिते सति ते तव पुरस्तत्क्रोधादिपंचकं वराक-
मकिंचित्करम् । अगस्त्यस्य समुद्रं पिबतो नैकादयः जलजंतवः

20 क्व गणनीयाः ॥

तत्किं ब्रवीम्युपचिकीर्षति मानसं मे
 त्वां प्रत्युपीति धिगनीतिविदुक्तिरेषा ।
 प्राण्योपमन्यमुनिना किलदुग्धसिन्धुं
 क्षीराभिषेककलशेन मुनिः (! शिवः) प्रसाद्यः ॥

- 5 त्वं यतो जितलोभस्तत् किं ब्रवीमि । जल्पितमहमशक्त
 इत्यर्थः । मम चित्तं तवोपकर्तुमिच्छतीत्येषाऽनीतिज्ञाना-
 मुक्तिः । शिवात्क्षीरसमुद्रं प्राण्योपमन्युना कर्त्ता शिवः किं
 प्रसाद्यः उपकर्तव्यः । यद्वा । यत्त्वां प्रत्युपचिकीर्षति मे चित्त-
 मित्येषाऽनीतिविदुक्तिः । वक्तुं नोचितमित्यर्थः । प्रत्युपकारं मच्च
 10 न करोतीत्याशंकायामाह । उपमन्युना क्षीराब्धिदोपि शिवः
 क्षीरकलशेन किल प्रसादनीयः ॥

उपोपकारस्य हीनतां प्रकटयितुमाह ।

- चिन्तामणेः कनकमध्यनिवेशनं यत्
 कल्पद्रुमस्य यदि वा जलसेकचिन्ता ।
 15 यत्नप्रवृत्तिरुत वा सुरभेस्तृणानाम्
 या स्यादुदात्तहृदयानुपकर्तुमिच्छा ॥

यदुदारचेतसामुपकर्तुमिच्छा तच्चिन्तारत्नस्य सुवर्णमध्ये
 स्थापनं । तथा कल्पवृक्षस्य जलसेकः । तथा कामधेनोस्तृणानां
 प्रवर्तने यत्नारम्भः । वाक्यार्थरूपकम् ॥

सद्भिस्तदप्युपकृतादपि कश्चिदंशः

स्वीकार्य एव लघुताशमनाय तस्य ।

नाग्राहि विश्वभयदे किमु कालकूट-

व्याधौ हते शशिकलाप्युदधेर्मृडेन ॥

- 5 यद्यप्युदाराश्रयाणां प्रत्युपकारार्थमसामर्थ्यं तथापि तस्योप-
कर्तर्यस्यालाघवार्थं कश्चिद्भागः कृतोपकारात्स्वीकार्यो ग्राह्यः ।
विश्वभयधायिनि कालकूटव्याधौ वारिते सति शिवेन समुद्रा-
चन्द्रस्य कलापि न किं गृहीता ॥

एवं स्थिते किमपि यत्कथयामि नाम

- 10 तत्कार्यमेव भवता मदनग्रहाय ।

धामत्रयीनयनभासितसर्वलोकः

किं चंद्रमौलिरपि नेच्छति दीपदानम् ॥

- कृतोपकारात् प्रत्युपकारो ग्राह्य एवं स्थिते सति यदहं
वदामि तन्मम प्रसादार्थं त्वया कार्यमेव । धामत्रयीयुक्तेर्नयनैः
15 प्रकाशितसमस्तभुवनश्चन्द्रमौलिरपि दीपदानं किं न कांचति ॥

आकर्णयेदमनवद्यमते मदुक्तं

विद्याधरः प्रसवितास्ति शकम्भरो मे ।

अस्यामरण्यभुवि तस्य ययौ तपोभि-

र्देवौ हिमाद्रितनया नयनातिथित्वम् ॥

हेनवद्यमते निरहंकारबुद्धे इदं मद्वचः शृणु त्वम् । शक-
भराख्यो मम पिताचारणभूमावस्ति । तस्य तपोभिर्हेतुभिरत्र
देवी गौरी दृग्गोचरत्वं प्रापत् ॥

शाकंभरौति च पितुर्मम कौर्त्तिहेतो-
5 नांम स्वयं वरदया सदयं तथात्तम् ।
भागीरथौति हि पदं सुरनिर्झरिण्यः
पुण्यानि शंसति पृथूनि भगीरथस्य ॥

सदयं मम पितुः कौर्त्तिहेतोर्वरदया गौर्या स्वयमेव
शाकभरौति नाम गृहीतम् । गंगाया भागीरथौति नाम
10 भगीरथस्य पुण्यानि बह्वनि सूचयति ॥

किं भूयसा सततसंनिहितामरण्ये
तामत्र मज्जनयितुर्विदधुस्तपांसि ।
विद्याधरेन्द्रनगरादतिसर्वकालं
तद्दर्शनाय करवाणि गतागतानि ॥

15 बह्वनोक्तेन किम् । मत्पितुस्तपांसि देवीमन्त्रारण्ये नित्य-
सन्निहितां चक्रुः । अतिसर्वकालं जातु जातु तस्या दर्शनाय
विद्याधरनगराद्गमनान्यागमनानि च करवाणि ॥

देवीप्रसादफलमद्य मयानवद्यं
पर्याप्तमाप्तमनवाप्तचरं पुरस्तात् ।

नानुग्रहानभिमुखीषु हि देवतासु
युष्मादृशो नयनगोचरमापतन्ति ॥

पूर्वमनवाप्तचरं देवीप्रसादफलं निर्दोषं संपूर्णं पुरः प्राप्तम् ।
त्वद्दर्शनप्राप्तिरेव देवीप्रसाद इत्यर्थः । देवतास्त्रेव प्रसादपरासु
5 त्वादृशां दर्शनं लभ्यत इत्यर्थः ॥

तद्वाहिनीं प्रहिणु यामवतीक्षणेच
कुन्तं निवेश्य भुवि पृष्ठमवेक्षमाणः ।
आरुह्य वाजिनमथ व्रज राजधानी-
मेतावतीमुपकृतिं कुरु मेऽद्वितीयाम् ॥

10 तत्तस्माद्धेतोस्त्वं सेनां विसृज । त्वं रात्रिक्षणे कुन्तमायुध-
विशेषं निधायाश्चमारुह्य पश्चात्प्रदेशमपश्यन्वाजधानीं गच्छे-
ती(?)तावतीमप्रतिमस्त्रामुपकृतिं कुरु मे ॥

उक्तेत्यदृश्यपदवीमुपयाति तस्मिन्
विश्वंभरापरिवृढः प्रजिघाय सैन्यम् ।
15 दृष्ट्वा कुलस्य परमभ्युदयं कृतार्थो
देवः स्वयं द्युमणिरस्तमयं प्रपेदे ॥

एवमुक्त्वा तस्मिंस्त्रिरोहिते सति स भूपतिः सेनां विसृ-
जत् । स्वकुलस्य महान्तमुदयं दृष्ट्वा कृतार्थः सन्निव सूर्यो
लोकान्तरमगात् ॥

भूमिं प्रविष्टवति कुन्त इवाथ भास्व-
 त्युच्चैस्तरां लवणसिंधुरुदच्छलद्यत् ।
 तच्चास्ति कारणलवो न हि कश्चिदन्यो
 राज्ञः प्रभावमहिमा स समस्त एव ॥

5 यथा कुन्ते तथा भास्वति भूमिं प्रविष्टवति सत्युच्चैस्तरां
 चारसमुद्रो यदुच्छलितवांस्तत्रान्यो हेत्वंगो न विद्यते । स सव
 एव राज्ञश्चन्द्रस्य - - - - - स्य प्रभावः ॥

अत्यद्भुतं किमपि कुंतमुखेन कर्म
 निर्मातुमुत्कलिकयेव तरंगितस्य ।
 10 वा - - - - - पृथिवीपुरुहूतबाहो-
 रन्यैव काचिदुदपादि तदाऽऽस्फुरत्ता ॥

कुन्तेन किमप्यद्भुतं कर्मनिर्मातुमुत्कलिकयेव व्याप्तस्य — —
 — — — — लोकोत्तरास्फुरत्ता कम्पो जातः । उदपादीति
 कर्तरि लुङ् ॥

15 वातायनादवततार ततस्तताभि-
 स्तत्काल आभरणदीप्तिभिरुक्तमार्गः ।
 स्वैरेव लक्षणगणैर्निज एव तेज-
 स्युद्दीपिताभिरिव मंगलदीपिकाभिः ॥

ततः स राज्ञा वातायनादवतीर्णस्तस्मिन् काले आभरण-

दीप्तिभिर्दर्शितमार्गः राज्ञा निजैरेव लक्ष्मणैर्निज एव तेजसि
ज्वलिताभिर्मंगलदीपिकाभिरिवेत्यग्नेचा ॥

आयानरत्नकिरणैः कचदाननाग्रं

द्वाराग्रतो झटिति वाडवमारुरोह ।

5 सप्तार्णवीप्रसभपानपरेण धाम्ना

कामं तले लवणसिन्धुरिपुं गृहीतम् ॥

आयाने वल्गायां रत्नांशुभिर्दीप्यमानमुखं हृद्यं स द्वारा-
दारुरोह । सप्तसमुद्राणां प्रसभं पाने परेण तेजसा हेतुना
राज्ञा तले गृहीतं नूनं लवणार्णवारिं वाडवाग्निम् ॥

10 किं भूरिभिः किमिति नात्र निधिं प्रसूषे

लावण्यसारमसि(? पि, यि) धात्रि तमेकमेव ।

इच्छापि येन न भवत्यपरेष्वितीव

कुंतेन भूमिमथ भूमिधरो विभेद ॥

वड्भभिः किम् । हे धात्रि येन करणभूतेनान्येषु निधि-
15 स्विच्छापि न भवति तमेकमेव ला(व)ण्येन चारेण च प्रधानं
निधिं किमिति न प्रकाशयसीतीव राजा कुंतेन भूमिं
भिन्नवान् ॥

नासापुटाननभुवो भुवनचयस्य

संबन्धिनः सममिव भ्रमतः समीरान् ।

स्पर्धावशादनुगतेन ततो ह्येन

प्रातिष्ठत प्रजविना नरलोकपालः ॥

नासापुटाभ्यामाननाच्च भूर्येषां तांस्त्रिभुवनस्य संबंधिन इव
समं भ्रमतो वायून् स्पर्धावशादिवानुगच्छता वेगवताश्चेन स

5 राजा प्रस्थानमकरोत् ॥

मध्येतमो रजसि दूरमुदस्यमाने

रत्नांशुभिर्हरिरराजत सत्वराशिः ।

द्रष्टा विमुक्तविकृतिप्रकृतिर्विशुद्धं

स्वं पौरुषं दधदशोभत वासुदेवः ॥

10 तमसो मध्ये मध्येतमः । अंधकारमध्ये रजसुदस्यमाने
उत्थाप्यमाने रत्नरश्मिभिर्हरिर्हयोऽशोभत । सत्वस्य बलस्य
राशिः तथा वासुदेवोऽशोभत । कौटुक । द्रष्टा पश्यन् । तथा
विमुक्तविकृतिः प्रकृतिर्यस्य । तथा स्वं पौरुषं दधानः । तथा
सत्वराशिर्धैर्यस्थानम् । अथ च हरि - - - - - तमोगुणे

15 - - - - - सत्वगुणस्य - - - - - निर्विकारप्रकृतिः वासु-
देवश्च ॥

चन्द्रोदये गगनचुंबितया स्थितत्वाद्-

दृष्ट्वा ह्ययं जविनमात्मसुतध्रमेण ॥

पञ्चादिवागतवतो जलधेः समौपे

20 कल्लोलशब्दमवनौरमणो न्यशामत् ॥

चन्द्रोदये पश्चादागतवतो लवणसिन्धोस्तरंगशब्दं स राजा-
 शृणोत् । आगमने हेतुरुत्प्रेक्ष्यते । वेगवंतं वाजिनं दृष्ट्वात्मसुत
 उच्चैःश्रवा इति भ्रमेण । भ्रमः कुतो जात इत्याह । आकाश-
 व्यापित्वेन स्थितत्वात् ।

5 तेन स्मरन्नपि वचः स नभश्चरस्य

कौतूहलेन बहलेन गृहीतकर्णः ॥

व्यावृत्तदृष्टिरनुगत्वरमैक्षत स्वं

पानीयतामिव यशो गतमब्धिमध्यात् ॥

तेन तरङ्गशब्देन घनेन गृहीतकर्णः श्रुतशब्द इत्यर्थः ।

10 भवता कुन्तं भूमौ निवेश्य पृष्ठं न विलोकनीयमिति विद्या-
 धरस्य वचः स्मरन्नपि कौतुकेन निवर्त्तितदृष्टिः स राजा
 समुद्रनित्यनिवासाञ्जलरूपतां प्राप्तं स्वमिव यशो दृष्टवान् ॥

यावत्किमेतदिति विस्मयवारिशय्या-

नारायणत्वमधिरोहति तावदेव ।

15 विद्याधरः स पुनरेव नरेश्वरं त-

मित्थं जगाद गगनार्णवकर्णधारः ॥

गगनार्णवे कर्णधारो नाविको व्योम्नि संचरन्स विद्याधरस्तं
 राजानमेवं तावदवोचत् । एष नादः किं संपन्न इति विस्मय
 एव वारिशय्या तच्च नारायणत्वं यावदाश्रयति । साश्चर्य

इत्यर्थः । वर्तमानमामीषे इति लट् । अन्यश्च यावज्जले
मज्जति तावत्कर्णधारः प्राप्नोति ॥

अक्रोधकुन्तकरणक्षतमोदमान-

पृथ्वीपुरंध्रिघनघर्मजलायमाना ।

5 **क्षेमंकरौ रणधुरासुहृदां हयानां**

राजन्नियं लवणसिन्धुरवातरत्ने ॥

अक्रोधं कोमलतया कुन्तकरणेन क्षतं घातस्तेन मोदमाना
तुष्यन्ती पृथ्वी एव पुरंध्रिस्तस्या घनघर्मजलवदाचरन्ती युद्ध-
भारोद्वाहिनां तवाश्वानां हितेयं लवणसिंधुरवतीर्णा । नखचते
10 च वनिताया घर्मजलोद्भेदः ॥

यन्नाम किंचन पतिष्यति वस्तुजातं

क्षारत्वमेष्यति तदत्र समस्तमेव ।

तेनाचरिष्यति न केवलमेव कीर्त्त-

र्यावत्प्रतापदहनस्य तवानुवृत्तिम् ॥

15 यत्किंचन खादु कटुकादिवस्तुजातमिह लवणसमुद्रे पति-
ष्यति तत्सर्वं कर्तुं । क्षारत्वं लवणत्वमेति यत् तेन हेतुना न
केवलं तत्कीर्त्तरेवायं लवणाभ्या अनुवृत्तिं करोति । तत्कीर्त्तिं
शृण्वतामन्ये वृत्तान्ताः क्षारा इत्यर्थः । यावत्प्रतापाग्नेरप्ययं
लवण - - अनुवृत्तिं करोति । दाह - - - कीर्त्तरतिमाधुर्या-
20 दन्येषां वृत्तान्ताः क्षारा इवेत्यर्थः ॥

इन्दोः कुलस्य यशसां वसतिः कुरूणां

क्षेत्रं पवित्रयति योजन - - - ।

लोकान्तरे फलति तत्फलवाननेन

लोकद्वयेऽपि भविता सवितुस्तु वंशः ॥

- 5 इन्दोः कुलस्य - - - स्थानां कुरूणां - - स्थिनां यशसां
वसतिस्थानं यत्क्षेत्रं कर्तुं । योजनपंचकपरिमाणं लोकं पवित्र-
यति तल्लोकान्तरफलं द - - । तुः पञ्चान्तरे । अनेनापरि-
माणेनेत्यर्थः । लवणसमुद्रेण तु सूर्यस्य कुलं सूर्यवंशा राजानो
लोकद्वये फलवन्तो भवन्ति । अयमर्थः । कुरुक्षेत्रमृताः कुरवः
10 स्वर्गमात्रं लब्धवन्तः । सूर्यवंशानां तु लवणाम्ना इह परत्र च
फलप्रदः ॥

तदेव लोकद्वयफलज्ञानं दर्शयति ।

यः पूर्वपुंभिरुदखन्यत तावकीनै-

रेकोऽपि तृप्तिमुपयाति न वाडवोऽस्मात् ॥

- 15 प्रीतिं विधातुमखिलेष्वपि (वाडवे?)षु
जातस्त्वदन्वयभुवां लवणाकरोयम् ॥

त्वदीयैः पूर्वपुरुषैः सगरैर्यः समुद्रः प्रागुत्वातस्तस्मादे-
कोऽपि वाडवो वडवाग्निर्न तृप्तिमेति । तत्कुलजातानां संब-
धिषु वाडवेषु अश्वेषु तृप्तिं कर्तुमयं त्वत्वातो लवणसमुद्रो

आशापुरीति नृपते कुलदेवता ते

शाकंभरी भगवती च मयि प्रसन्ना ॥

एते द्युसिन्धुयमुने इव सर्वकालं

रक्षिष्यतो लवणवारिनिधिं मिलित्वा ॥

राजन्नाशापुरी नाम देवी तव कुलदेवता भवति ।
शाकंभरी देवी च मयि प्रसन्ना भवति । एते गंगायमुने इव
मिलित्वा लवणाब्धिं रक्षिष्यतः ॥

आविर्भविष्यति विना भवदन्ववाय-

मन्यस्य कस्यचन नैष रसो नृपस्य ।

10 श्रीर्वाग्निधूमभवमब्दगणं हि हित्वा

पातुं न कोऽपि तृषितः क्षमते पयोधौ ॥

भवत्कुलं विनान्यस्य कस्यापि राज्ञोऽयं लवणाग्ना न
प्रकटीभविष्यति । संभावनायां लट् । वाडवधूमजातं मेघकुलं
त्यक्त्वा को नु तृषितः समुद्रे पातुं समर्थः । हित्वेति क्त्वा-

15 प्रत्यय* - - - - - ॥

किं भूमया स्फटिकशैल इवाष्टमूर्ति-

शिश्नाबलेन परिकल्पिततोयमूर्तिः ।

* The text is here left blank even in the original MS., which indicates that our MS. was probably a copy from another MS., also incomplete or injured.

अभ्यागतश्चरणयोस्तलमद्य यस्याः

शाकंभरीति गिरिजा तव सेयमग्रे ॥

बहुनोक्तेन किम् । अष्टमूर्त्तिः सकाशाच्छिवासंप्रदायस्त-
द्वलेन परिकल्पितजलरूपस्फटिकाद्रिरिव यस्याः पादतल-
5 मागतोद्य सेयं शाकंभरी देवी तवाग्रे वर्तते । अष्टमूर्त्तिरिति
साभिप्रायः ॥

एतां प्रणम्य शिवशेखरचन्द्ररेखा-

मन्दाकिनीशिशिरपादयुगामिदानौम् ।

निर्वापिताध्वगमनक्लमसन्निपातः

10 पृथ्वीपुरन्दर पवित्रय राजधानौम् ॥

शिवस्य शेखरीभूते ये चन्द्रलेखामन्दाकिन्यौ तद्वत्ताभ्या-
मिव तापहरपादद्वयमेतां गौरीं प्रणम्य शमितमार्गतापज्व-
रस्त्वं राजधानौं गच्छ ॥

उक्तेति विस्मयसुधारसवर्षमेघो

15 बद्धांजलिः प्रति - - - - - ।

राजापि तूर्णमवरुह्य हयादयासौत्

- - - - - शकत्वम् ॥

विस्मय एव सुधारसस्तस्य वर्ष मेघः, स विद्याधर इत्युक्ता

बद्धांजलिः सन्प्रत्यमुञ्चत् । राजा च सद्योऽश्वादवस्त्राचम्य
सलिलस्य परौचामकरोत् । पुष्पं प्राप्तवान्यानादिनेत्यर्थः ॥

अथ शिवशिरश्चन्द्रज्योत्स्नाललाटविलोचन-
ज्वलनसततप्रत्यासत्तिप्रभावकवोष्णयोः ।

5 उपचितयशस्तेजाः शाकंभरौचरणाजयो-
रनतिनिकटे नौत्वा रात्रिं प्रगे नगरौमगात् ॥

शिवस्य शिरसि चन्द्रज्योत्स्ना तथा ललाटे विलोचनाग्निः ।
तयोर्नित्यं प्रत्यासत्तिस्तत्प्रभावेन कवोष्णयोः । शिवो नित्यं
शाकंभरौ प्रणमतीत्यर्थः । शाकंभरौपादयोरनतिसमीपे
10 रात्रिमुषित्वा राजा । उपचिते यशस्तेजसौ यस्य स तथा सन्
प्रातर्नगरौ गतः । यशस्तेजसोरूपचये कवोष्णदेवौपादतलवासः
सम्भावित इति भद्रम् ॥

श्रीलोलराजसुतपण्डितभट्टनोन-

राजात्मजो विवरणेन चतुर्थसर्गम् ।

15 दुर्गं सुबोधमकरोदिह जोनराजः

पृथ्वीमहेन्द्रविजयाभिधकाव्यराजे ॥ १ ॥

पृथ्वीराजविजये चतुर्थः सर्गः समाप्तः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः ॥



लवणाकरमाकर्ण्य स्ववंश्येनावतारितम् ।

रथाश्वनामिव प्रीत्यै सप्ताश्वो द्रुतमाययौ ॥ १ ॥

स्ववंश्येन वासुदेवेनावतारितमुत्पादितं लवणसमुद्रं श्रुत्वे-
वाश्वानां प्रीत्यर्थमिव सप्ताश्वः सूर्यो द्रुतमुदितः ॥ १ ॥

5 शापं दशरथोऽप्यापदर्कवंश्यो मृगव्यया ।

अवाप्तानुग्रहो राजा स पुनः प्राविशत्पुरीम् ॥ २ ॥

सूर्यवंश्यो दशरथोऽपि आखेटिकया शापं प्रापत् । स तु
राजा सूर्यवंश्यो मृगव्यया लब्धप्रसादो नगरीमविशत् ॥ २ ॥

शाकंभरीप्रदेशे यदुदगुस्तस्य कीर्तयः ।

10 अतो नोद्वेगमाजग्मुः पुलिने लवणोदधेः ॥ ३ ॥

शाकंभरीप्रदेशो मरुभूमित्वात्सारः । तत्र यत्तस्य यशांसि
जातान्यतः चाराभितटे तानि नोद्वेगमागतानि । चाररस-
सात्त्वत्वादिति भावः ॥ ३ ॥

लवणांभोनिधेः स्वामी क्षीरांभोधिनिवासिनः ।

15 क्रमात्स वासुदेवस्य वासुदेवोन्तिकं ययौ ॥ ४ ॥

क्षीराब्धिवासिनो वासुदेवस्य निकटं स वासुदेवो राजा
गतः । लवणांभोधेः स्वामीति समीपगमनौचित्यार्थम् ॥ ४ ॥

भुवं शाकंभरीदेव्या सनाथां यदुपासते ।

तद्वंश्याः तेज भण्यन्ते सर्वे शाकंभरीश्वराः ॥ ५ ॥

शाकंभरीपालितां भूमिं वासुदेवकुलजा यत्सेवन्ते ततः
शाकंभरीश्वराः कथ्यन्ते ॥ ५ ॥

5 उत्तुंगैः - - - भास्वन्मिचैरहितवर्जितैः ।

राजचन्द्रैरनन्ता भूः समराजि महोत्सवैः ॥ ६ ॥

तै राजचन्द्रैरनन्ता भूमिर्न - - - - -
त्यर्थः । महान्त उत्सवा येषां तैः । उत्तुङ्गैरुदारैः । भास्वन्ति
दीप्ताणि(नि) मिचाणि शत्रुरहितैः ॥ सर्वपदाश्रयः पुनरुक्ता-
10 भासः । उत्तुङ्गादीनां सर्वेषां पदानामामुखे पुनरुक्तत्वात् ॥ ६ ॥

जज्ञे तदन्वयोदन्वत्सुधांशुर्वसुधापतिः ।

सामन्तराजः सामन्तराजिकैरविणीरविः ॥ ७ ॥

वासुदेववंशसमुद्रचन्द्रो मंडलेश्वरपंक्तिकुमुदिनीसूर्यः साम-
न्तराजा नामा - - ॥ क्कैकानुप्रासः । क्कैकाः पञ्चविशेषाः ।
15 तद्वागुपलक्षितोनुप्रासः । दन्व - - - - - कानामावृत्तेः ॥ ७ ॥

सुषुवे जयराजं तं राजन्तं स जयश्रिया ।

यं वीक्ष्याजौ विवस्वन्तं (वस्वन्तं प्रा)प राजकम् ॥ ८ ॥

विवस्वन्तं सूर्यसमं यं दृष्ट्वा रणे राजगणश्चन्द्रगणश्च वस्वन्तं

तेजोनाशं प्राप तं जयलक्ष्म्या शोभमानं जयराजनामानं पुत्रं
स प्रापत् ॥ यमकम् । तुल्यरूपयोः समुदाययो रावृत्तेः ॥ ८ ॥

नितान्तमुन्नतिमतो नेतुमानतिमातताम् ।

तेने तेन न तान्नेतुमुन्नतिं मानिना मतिः ॥ ९ ॥

- 5 तेन मानिना जयराजेनोन्नतिमत उद्धतान्नतिं नेतुं नम-
यितुं तथा नतान् प्रणमत उन्नतिं नेतुं वर्धयितुं नितान्तं
मतिः कृता ॥ अक्षरो वृत्तानुप्रासः । नकारतकारमकाराणां
त्रयाणामावृत्तेः ॥ ९ ॥

नतेनतेतेनतेन तेन तेन नतेन ते ।

- 10 नते नते तेन तेन तेनते न नते नते ॥ १० ॥

इति स्तुतं कविवरैर्मुख्यं सर्वमहस्विनाम् ।

प्राप विग्रहराजं स ग्रहराजमिवात्मजम् ॥ ११ ॥

युगुलम् ॥

नतेति निष्ठान्तं स्त्रीलिङ्गं प्रथमैकवचनं क्रियापदम् ।

- 15 इनतेति कर्मपदम् । इतेनतेनेति कर्तृविशेषणम् । तेन तेनेति
कर्तृपदम् । नतेनेति च कर्तृविशेषणम् । ते इति त्वच्छब्दस्य
जसन्तस्य रूपम् । इति पूर्वार्थं पदविभागः । नते नते इति
सप्तम्येकवचनान्तं पदद्वयम् । तेन तेनेति च तृतीयान्तम् ।
तेनते इति द्विवचनान्तं कर्तृपदम् । नेत्यव्ययम् । नते नते
20 इति द्विवचनान्तं पदद्वयम् । तेन तेन पुरुषेण कर्त्रा ते

तवसंबन्धिनी इनता ऐश्वर्यं नता । सर्वैस्त्वदैश्वर्यप्रणामः कृतः ।
इति प्रथमार्धं व्याख्येयम् । तेन ते कर्तारौ नते नते न
भवतः । उन्नते उन्नते भवत इत्यर्थः । ता लक्ष्मीः । इनता
स्वाम्यम् । कस्मिन् । तेन तेन हेतुना नते नते प्रणामं
5 कुर्वति पुरुषे ॥ सर्वतोभद्रम् । चित्रमिदं खड्गादिसंनिवेशहेतु-
वर्ण - - - - ॥ १० ॥ - - - - न्नैः स्तुतं सर्वतेजस्विषु प्रधान-
ग्रहराजं सूर्यमिव स राजा विग्रहराजाख्यं पुत्रं प्रापत् ॥ ११ ॥

यस्य खड्गादिनिर्गत्य गंगयेव हरेः पदात् ।

कीर्त्या चैलोक्यपावन्या लङ्घिता गिरिसागराः ॥ १२ ॥

10 विष्णोः पदादिव यस्य खड्गादिनिर्गत्य गङ्गयेव त्रिभुवन-
पावन्या कीर्त्या पर्वतसमुद्रा लङ्घिताः ॥ १२ ॥

दूरस्थाप्यरिवक्त्रेषु बभौ यत्खड्गकालिका ।

कलंकश्यामिका चान्द्रौ शतपत्रवनेष्विव ॥ १३ ॥

यत्खड्गस्येव कालिका शत्रुमुखेषु बभूव । कदाचित् सैव
15 स्यादित्याह दूरस्थापि । दूरादेव प्रतापभयात्पलायमानानां
द्विषां मुखांतिर्हीनाऽतः संभाव्यते खड्गश्यामिकैव लम्बेति ।
का केष्विव । पद्मवनेषु चान्द्रौ कलंकश्यामिकेव ॥ उपमा-
त्रयम् । सर्वमहस्विनां मुख्यानामिति (verse 11) साधारण-
धर्मस्य सङ्गावात् । उपमानभूतेन ग्रहराजेनापि साधारणं
20 धर्मस्योपमेयवत् संबन्धात् । खड्गपादयोः (verse 12) बिंबप्रति-

बिंबभावात् । कालिकाश्यामिकयोः (verse 13) पर्यायनिर्देशात् ॥ १३ ॥

यशोभिर्यस्य वर्षान्ते दुर्यशोभिश्च वैरिणाम् ।
मिलितैर्हंसकादम्बैरिव दिद्युतिरे दिवः ॥ १४ ॥

- 5 वर्षाणामन्ते मिलितैर्हंसैः काकैश्च यथा दिशः शोभन्ते तथा तद्यशोभिः शत्रुदुर्यशोभिश्च दिशः शोभन्ते ॥ समुच्चयोपमा । हंसकाकानां यशोपयशसां च सम -- दिशां द्योतनात् ॥ १४ ॥

तनयश्चन्द्रराजोस्य चंद्रराज इवाभवत् ॥
संग्रहं यः सुवृत्तानां सुवृत्तानामिव व्यधात् ॥ १५ ॥

- 10 चन्द्रराजाख्यः । चन्द्रो ग्रन्थकारः । स इवाख्य पुत्रश्चन्द्रराजाख्योभवत् । शोभमानानां वृत्तानां वसन्ततिलकादीनामिव सुवृत्तानां सदाचाराणां पुरुषाणां यः संग्रहमकरोत् ॥ श्लेषमिश्रोन्वयः । चन्द्रराजस्य चन्द्रराजेनैव सुवृत्तानां सुवृत्तैरेवोपमानात् । तेनैवोपमानत्वेऽन्वयस्य सद्भावात् प्राकरणिका-
15 प्राकरणिकं न विचार्यम् ॥ १५ ॥

सर्वभूतोपयोगित्वात् सर्वथा हृदयंगमा ।
क्षमेव दयिता तस्य दयितेव क्षमाऽभवत् ॥ १६ ॥

उपकारपरत्वेन सर्वभूतानामुपयोगित्वात् सर्वथा मनोहरा दयिता दयावत्त्वं प्रिया च क्षमेव भूरिव क्षान्तिरिव चाभूत् ।

क्षमा दयितेवाभवत् ॥ श्लेषमिश्रैवोपमेयोपमा । क्षमादयितयो
रन्योन्यमुपमेयोपमानत्वात् । तस्याश्च परस्परमुपमानोपमेयत्व-
लक्षणत्वात् ॥ १६ ॥

तस्य गोपेन्द्रराजोभूदनुजो यो मनौषिणाम् ।

5 गोपेन्द्रराजस्मृतिक्लृप्तोमंडलधृतेः - - ॥ १७ ॥

गोपेन्द्रराजाख्यस्तस्यानुजोभूत् । यो गोमंडलस्य भूवलयस्य
धेनुवर्गस्य रश्मिचक्रस्य वा धृतेर्धारणाद्गोपेन्द्रनामराज्ञश्चन्द्रस्य च
स्मारयिताभूत् ॥ श्लेषेण स्मरणम् । गोधारणेन कृष्णेन्दुसमस्य
राज्ञोऽनुभावात्क्षणचन्द्रस्मरणम् ॥ १७ ॥

10 ततो दुर्लभराजेन चन्द्रराजस्य स्रुनुना ।

विनोदकेन गमिता वृद्धिं कौर्त्तिलता भुवि ॥ १८ ॥

चन्द्रराजपुत्रेण दुर्लभराजेन विनोदकेन प्रजादुःखहारिणा
कौर्त्तिरेव लता भुवि वर्धिता ॥ उदकेन विना लतावर्धना-
त्प्रतीयमानविरोधः । निरङ्गरूपकम् । भिन्नयोरेव सामा-
15 नाधिकरणेन निर्देशे रूपकसद्भावात् । निरङ्गं कीर्त्तौ लता-
रोपस्यारोपान्तरनिरपेक्षत्वात् ॥ १८ ॥

यस्य कैरविणौ व्योम्नि पृथिव्यां तारकावलौ ।

पाताले चंद्रिकाकीर्त्तिः कं न चक्रे सविस्मयम् ॥ १९ ॥

आकाशे कुमुदिनी तथा भूमौ तारापंक्तिस्तथा पाताले

ज्योत्स्ना यस्य कौर्त्तिः सर्वजनं साश्चर्यमकरोत् ॥ निरङ्गं
मालारूपकम् । एकस्मिन्विषयेऽनेकेषामारोप्यमाणत्वात् । निरङ्गं
चारोपान्तरनिरपेक्षत्वात् ॥ १९ ॥

अग्निः स्नातोऽस्थितो यस्य गङ्गासागरसंगमे ।

५ चिरं गौडरसास्वादशुद्धो ब्राह्मणतां ययौ ॥ २० ॥

गंगासागरसंगमे पूर्वं स्नातोऽनन्तरमुत्थितो यस्याग्निर्गौडानां
जानपदविशेषाणां रसाद्या भूमेरास्वादे शुद्धो तत्र ब्राह्मणस्य
भावं प्राप्तः । गौडरसो गुडसंबन्धी रसश्च । यद्वा शुद्धोप्रधानो
ब्राह्मण इति ॥ केवलं श्लिष्टं परंपरितम् । खड्गे ब्राह्मणारोप-
१० स्थान्यारोपं गौडरसं प्रति सापेक्षत्वात् ॥ २० ॥

प्रजापतिपदब्रह्मा षड्गुण्यपुरुषोत्तमः ।

सुतो गोविन्दराजोऽस्य शक्तिचयमहेश्वरः ॥ २१ ॥

प्रजापतिपदं राज्यं स्रष्टृत्वं च तत्र ब्रह्मा । षड्गुणः संधि-
विग्रहादयो ज्ञानादयश्च तेषु पुरुषोत्तमो विष्णुः । शक्तयः
१५ प्रभुत्वादय इच्छादयश्च तत्र महेश्वरः ॥ मालारूपकं तदेव ।
ब्रह्मशब्दादीनामारोपाणां प्रजापत्यादीनारोपान्प्रति सापेक्ष-
त्वात्परंपरितम् ॥ २१ ॥

नयन्मन्मथमुल्लासमात्मभूतः शिवस्य च ।

द्वितीयश्चन्द्रराजोभूत् ततोऽरिध्वांतचन्द्रमाः ॥ २२ ॥

रूपयौवनाद्युल्लासात्काममुल्लासं प्रापयन् भक्तिभराच्छिव-
स्थात्मभूतः शत्रुतिमिरेन्दुर्दितौयश्चन्द्रराजाख्योभूत् ॥ केवल-
मस्त्रिष्टं परंपरितम् । चन्द्रारोपस्य ध्वांतारोपे सापेच-
त्वात् ॥ २२ ॥

5 सर्वराजार्कजीमूतः सर्वदिग्वल्लरीमधुः ।

गोवाकस्तत्सुतः सर्वद्वीपमण्डलयामिकः ॥ २३ ॥

सर्वे राजान एवार्कस्तेषां जीमूतः । सर्वदिग् एव वल्लर्य-
स्तासां मधुर्वसन्तः । सर्वद्वीपा एव मंडलं तत्र यामिकः ॥
मालारूपकं परंपरितम् । एकस्मिन्ननेकेषामारोपमाणत्वा-
10 न्मालारूपकम् । परस्परसापेक्षारोपत्वात्परंपरितम् ॥ २३ ॥

उपायवेदसर्वज्ञो गुणषट्कर्मपारगः ।

राजर्षिरेष मंत्राङ्गशिखिपंचकमध्यभाक् ॥ २४ ॥

उपायाः सामादयः । त एव वेदास्तेषु सर्वज्ञः । गुणाः
सन्धादय एव षट्कर्माण्यध्यापनादीनि तेषां पारगः । मंत्रा-
15 ङ्गानि कर्मणामारम्भोपाय इत्यादीनि एव शिखिनोऽग्नयस्तेषां
पंचकं तन्मध्यभाक् एष राजर्षिरभूत् ॥ प्रकृतोपयोगि । राजर्षि-
विशेषानुगुण्यात् ॥ २४ ॥

प्रतापतापनोपास्तिप्राप्तकीर्तिकलागमः ।

कृपाणकृष्णश(सा)रेण पूर्णो राजा रराज यः ॥ २५ ॥

20 कृपाण एव कृष्णश(सा)रस्तेन पूर्णो यो राजा रराज ।

कौटुक । प्रताप एव तापनः सूर्यस्तस्योपास्तिरुपायनं तथा
 प्राप्तः कौर्तिकलागमो येन सः । राजा जन्द्रश्च तपनसेवया
 प्राप्तकलागमो मृगांश्च भवति ॥ स्निष्टमेकदेशविवर्त्ति ।
 अर्थावसेयारोपत्वादेकदेशविवर्त्ति । स्निष्टं तु राजशब्दस्योभय-
 5 वाचितात् ॥ १५ ॥

मलस्य मानससरो विकारस्य पयोर्णवः ।

अव्याप्तेर्गगनं यस्य यशः कैर्नाम लंघ्यते ॥ १६ ॥

मलस्य मालिन्यस्य मानससरः । यद्यशो निर्मलमित्यर्थः ।
 तथा विकारस्य चौरसमुद्रः । निर्विकारमित्यर्थः । अव्याप्तेर्ग-
 10 गनं । व्यापकमित्यर्थः । यस्य यशः कैर्लघ्यते । आरो-
 प्यमाणानां मानसादीनामलंघ्यत्वादुक्तिसंगतिः । वैधर्म्येण
 निरंगं मालारूपकम् । मलादीन्प्रति मानसादीनां प्रति-
 कूलत्वाद्वैधर्म्यम् ॥ १६ ॥

अयशोमेघशरदा दुरितध्वान्तराकया ।

15 यस्य श्रिया प्रमादाद्द्विहेमन्तनिशया जितम् ॥ १७ ॥

यस्य श्रिया जितमिति भावे क्तः । अयश एव मेघस्तस्य
 शरदा । तथा पापांधकारपौर्णमास्या । तथा प्रमादसर्पस्य
 हेमन्तराश्या । शीतकाले सर्पाणां विलप्रवेशेनादर्शनाद्द्वेमन्त-
 निशारूपकम् ॥ परंपरितं तदेव । मेघादीन् प्रति शरदा-
 20 दीनां प्रातिकूल्यात् ॥ १७ ॥

समुद्राः स्थिरलावण्याः परकर्णभिदोर्जुनाः ।

यशसां राशयो यस्य दिवि बद्धपदा ध्रुवाः ॥ २८ ॥

स्थिरं लावणं लालित्यं च येषां । सम्यगुच्चैरान्तीति च ।
परेषां शत्रूणां कर्णं श्रवणं । परं शत्रुं कर्णं राधेयं च
5 भिन्दन्ति । अर्जुनाः श्वेताः पाण्डवविशेषश्च । दिवि नाके
व्योम्नि च कृतस्थितयो ध्रुवा दृढास्ताराविशेषश्च । अर्जुना
ध्रुवा इति बद्धवचनं विषयाणां प्रत्येकमारोपात् ॥ आविष्ट-
लिंगं रूपकम् ॥ २८ ॥

पुण्डरीकं विरिंचस्य श्वेतद्वीपं (मधु) द्विषः ।

10 चंद्रापी - - - - - शशुद्धमवहन् मनः ॥ २९ ॥

ब्रह्मादीनां पद्मादि यच्चित्तमधारयत् । तत्र तेषां नित्य-
निवासात् ॥ परिणामः ॥ २९ ॥

तेजोबलाद्वा(दशभिः) - - - महदायिभिः ।

भूपैरभ्यर्थ्यमानत्वे स्वसारं यः कलावतीम् ॥ ३० ॥

15 चन्द्रमूर्तिभ्रमकरीं मुखलक्ष्येव संज्ञया ।

कान्यकुब्जमहेशाय सरस्वानिव दत्तवान् ॥ ३१ ॥

युगुलम् ॥

तेजस्वितात्सूर्यसमैर्द्वादशभिर्भूपादैर्याच्यमानत्वेऽपि कला-
वतीं कलावतीनामानं चतुष्पष्टिकलासहितां च स्वसारं यः
20 कान्यकुब्जेन्द्राय दत्तवान् । मुखकान्था कलावतीति संज्ञया

च चन्द्रभ्रान्तिकरीम् । सरस्वानिव गांभीर्यात्समुद्रसमः ।
सरस्वांश्चेश्वराय चन्द्रलेखां ददौ ॥ भ्रांतिमान् । कलावतीति
वचनेन भ्रांतिजननात् ॥ ३० ॥ ३१ ॥

जितैः प्रदत्तसर्वस्वः स्वस्य द्वादशभिर्नृपैः ।

५ यमो धनपतिर्वायं संदेहमिति यो दधौ ॥ ३२ ॥

युद्धे जितै राजभिर्हेतुभिः स्वस्य प्रदत्तं सर्वस्वं येन स यो
राजा किं यमः किं वा वैश्रवण इति संदेहं दत्तवान् । राज्ञां
पीडनाद्यमः । अतिदानाद्धनदः । शुद्धः संदेहः । सन्देहे एव
पर्यवसानात् ॥ ३१ ॥

१० नन्दनश्चन्दनस्तस्य यस्य नामन्युदीरिते ।

जनः सफल इत्युक्तिशेषादृक्षभ्रमं जहौ ॥ ३३ ॥

चन्दन इति यस्य नामन्युक्ते सति तत्संदेहं प्राप्नुवंलोकः
ततः सफल इत्युक्तिशेषादृक्षभ्रममत्यजत् । चन्दनवृक्षस्य फला-
नामनुत्पत्तेः । निश्चयान्तः । प्रथमं संग्रहे सति निश्चयस्य

१५ पर्यवसानात् ॥ ३३ ॥

फलदश्चन्दनो दृष्टो भोगिनो यमुपासते ।

सत्कलास्ते च तेषां च विषदं वदनं सदा ॥ ३४ ॥

इत्यादि वर्णनं यस्य मिलत्संदेहनिश्चयम् ।

न वृक्षः कल्पवृक्षोयमित्युक्तावेति संगतिम् ॥ ३५ ॥

चंदन इत्युक्ते संग्रयः । फलद इत्युक्ते निश्चयः । चंदनस्य
 फलदत्वाभावात् । भोगिनः सुखिनश्च यं सेवन्ते इति सन्देहः ।
 ते च भोगिनः सत्कलाः विद्यमानश्रुतयः सहृदयाश्चेति
 निश्चयः । तेषां भोगिनां मुखं विषदं प्रसन्नं विषोद्गारकं चेति
 5 संदेहः ॥ निश्चयगर्भः । प्रथमं संदेहः । मध्ये निश्चयः । पश्चात्
 संदेहः ॥ १४ ॥ संग्रयनिश्चयसंकीर्णं यस्यैवं वर्णनं संगति-
 मेति । संगच्छते । कदा । अयं राजा वृद्धो न भवति ।
 किं तर्हि । कल्पवृद्धो भवतीत्युक्तौ सत्याम् । कल्पवृद्धे
 पूर्वाक्तस्य सफलत्वादेर्विशेषणजातस्य संभवात् ॥ निश्चयान्तः
 10 संदेहः । अन्तनिश्चयस्य लाभात् ॥ १५ ॥

बभार न स राजत्वं राजराजत्वमेव तत् ।

अन्यथा निधयः सर्वे कथमायत्ततां ययुः ॥ ३६ ॥

इतरराजवत् स राजा राजत्वं नावहत् । किन्तु तत्तस्य
 राजत्वं राजराजत्वमेव भवति । राज्ञां राजा राजराजः
 15 वैश्रवणश्च । अन्यथा यदि स राजराजो न - - - - -
 निधयस्तस्यायत्ततां जग्मुः । - - - - - जस्यैवनिधि - - - - -
 प्रथमापङ्क्तिः । विषयस्य निषेधेऽन्यस्य विधानात् । निषेधपूर्व-
 मारोपात् ॥ ३६ ॥

रुद्राणौ तदधुदौपसद्वस्त्रं तमसो भिदे ।

20 न पुष्करतटे लिङ्गसद्वस्त्रं तददौदिपत् ॥ ३७ ॥

रुद्राणी नामा तदधुः पुष्करतटे तमोहरणार्थं तद्दीप-
सहस्रमज्जलयत् । न पुनस्तल्लिंगसहस्रमज्जलयत् ॥ द्वितीया-
पङ्क्तिः । आरोपपूर्वकं निषेधस्यः सद्भावात् ॥ ३७ ॥

योगिन्यात्मप्रभास्यासावणिमाद्यष्टकच्छलात् ।

5 अपश्यत्फलितां स्थाणावर्हिंसाद्यष्टपुष्पिकाम् ॥ ३८ ॥

आत्मप्रभा नाम सा योगिनौ स्थाणौ परमेश्वरविषया-
महिंसादिमेवाद्यष्टपुष्पिणीं फलितामज्ञासीत् । कस्माद् - - दि
यदष्टकं तद्रूपात् ॥ तृतीयापङ्क्तिः । असत्यत्वप्रतिपादकेन
च्छलशब्देन निर्देशात् ॥ ३८ ॥

10 रुद्राणीति पुरंध्रीभिर्योगिनीति च योगिभिः ।

आत्मप्रभेति सा ज्ञाता विशंत्यर्कस्य मंडलम् ॥ ३९ ॥

पुरंध्रीप्रभृतिभिः सा रुद्राणादित्वेनोल्लिखिता ॥ उल्लेखः ।
एकस्थानेकधा कल्पनात् ॥ ३९ ॥

सूनुर्वाक्पतिराजोस्य प्रसाद इव मूर्तिमान् ।

15 हिताय सर्वलोकानामुदपद्यत शंभवः ॥ ४० ॥

लोकानां हितार्थं मूर्तेरिव प्रसाद इव विग्रहराजो(?)वाक्-
पतिराजो)स्य पुत्रो जातः ॥ गुणोत्प्रेक्षा । प्रसादाख्यो गुणो
विषयित्वेन संभावितः ॥ ४० ॥

स भुजाभ्यां जयान् प्रापदष्टाशीत्यधिकं शतम् ।

20 बुद्ध्या निर्मलया कालं कामं च मनसाजयत् ॥ ४१ ॥

स जयानामष्टाशीत्यधिकं शतं भुजाभ्यां प्रापत् । स
शुद्धया बुद्ध्या कालं निर्मलेन च मनसा काममजयत् । इति
नवत्यधिकं शतं प्राप्तम् ॥ ४१ ॥

गणानां सूचयन्तीव जयानामिति यत्र ताः ।

5 धामत्रयीकला वक्त्रपंचके पंचधा स्थिताः ॥ ४२ ॥

युगुलम् ॥

यत्र वर्तमानानां जयानां नवत्यधिकं जयानां शतमिति
संख्यां पंचवक्त्रस्थेश्वरस्य मुखपंचके स्थिता धाम(त्र)यीकलाः
सूचयन्ति । चन्द्रकलाः षोडश । सूर्यकला द्वादश । वक्त्र-
10 कला दशेति । प्रतिवक्त्रमष्टात्रिंशद्भवन्ति । अष्टात्रिंशत्संख्यास्ता
धामत्रयीकलाः । पंचमुखस्थेश्वरस्य प्रतिमुखं वर्त्तमानत्वात्पंच-
भिर्गुणिता भवन्तीति नवत्यधिकं शतं भवन्तीति ॥ क्रियो-
त्प्रेक्षेयम् । सूचनक्रियायाः संभावनात् ॥ ४२ ॥

तं प्रासादमसौ चक्रे पुष्करे व्योमवाससः ।

15 भक्त्या त्यक्तोत्तरासंगः कैलास इव भाति यः ॥ ४३ ॥

असौ राजा पुष्करतीर्थे हरस्य तं प्रासादं चक्रे यो भक्त्या
त्यक्तोत्तरासंगः कैलास इव भाति । त्यक्तोत्तरदिव्यसंगस्य ॥
द्रव्योत्प्रेक्षा । कैलासस्य द्रव्यत्वात् ॥ ४३ ॥

धर्मस्येव नवः सर्गः स्थितिः - - इव श्रियः ॥

20 सिंहराज - - - - स्तस्य संहार इव मान्मथः ॥ ४४ ॥

यो धर्मस्येव सर्ग इत्यादिरन्वयो योज्यः । लावण्याति-
शयेन रणरणिकादायित्वात्संहारोत्प्रेक्षणम् ॥ सिद्धात्मिकोत्प्रेक्षा ।
सर्गादयो घञन्तास्तेषां कृदभिहितो भावो द्रव्य - - - वङ्गावेन
सिद्धत्वात् ॥ ४४ ॥

५ पुष्करे पुष्कलसुधं प्रासादं सोऽपि निर्ममे ।
श्वेतो गुण इवोपास्ते यो देवं शशिशेखरम् ॥ ४५ ॥

श्वेतो गुण इव यो हरं सेवते तं प्रासादं सुधासितं स
पुष्करे कृतवान् ॥ उपमालंकारसंकरोत्प्रेक्षा । श्वेतगुणस्य
साधारणत्वेनोपमा भवति संभावनायां तदुत्प्रेक्षा ॥ ४५ ॥

१० सिंहराजं तमालोक्य सिंहराजमिवापरम् ।
धर्मस्य त्रिपदीच्छेदौ ननाम कलिकुंजरः ॥ ४६ ॥

अपरं लोकोत्तरं सिंहमिव यं दृष्ट्वा सिंहराजाख्यं धर्मस्य
पादत्रयापहारी कलिहस्ती नष्टः । त्रिपदी गतिविशेषः ।
तच्छेदी च । हस्ती सिंहं दृष्ट्वा नश्यति ॥ जात्युत्प्रेक्षा । सिंहो

१५ जातिः ॥ ४६ ॥

सूनुर्विग्रहराजोस्य सापराधानपि द्विषः ।
दुर्बला इत्यनुध्यायन्नक्षत्रिय इवाभवत् ॥ ४७ ॥

अमी दुर्बला भवन्तीति कृतापराधानपि शत्रूंश्चिन्तयन्नक्षत्रिय
इवासीत् । क्षत्रियकार्यस्य मारणस्याकरणात् ॥ जातेरभावो-
२० त्प्रेक्षा । अक्षत्रिय इति जात्यभावः ॥ ४७ ॥

अनीलाश्रमिवादित्यं कुर्वद्भिर्हयरेणुभिः ।

लेभे खुररजोघोराब्धकार इव नाम यः ॥ ४८ ॥

न नीला अश्रमिवादित्यं कुर्वतीभिर्वाजिधूलि-
भिर्हयरेणुभिः खुररजोघोराब्धकार इति यो नाम लब्धवान् ।

5 अर्थादश्वानां खुररजमा घोरोब्धकारो यस्मादिति विग्रहः ॥
गुणस्य । गुणस्य नीलत्वस्याभावोत्प्रेक्षणम् ॥ ४८ ॥

अतिष्ठन्तमिवात्मानं मत्वा स्वखुरधूलिभिः ।

बभ्रमुर्वाजिनो यस्य संकटास्वपि वीथिषु ॥ ४९ ॥

स्वखुररजोभिर्वीथीनामात्मानमवटरूपेणातिष्ठन्तमिव मत्वा
10 यदश्वः संकटभागेष्वप्यभ्रमन् । रजसा वटानां पिहितत्वात्तेष्वपि
वाजिनो बभ्रमुरित्यर्थः ॥ क्रियायाः । स्थितिक्रियाया अभावो-
त्प्रेक्षणम् ॥ ४९ ॥

गृह्णद्भिः परया भक्त्या बाणलिंगपरंपराः ।

अनर्मदेव यत्सैन्यैर्निर्मयत नर्मदा ॥ ५० ॥

15 भक्त्यातिशयात्पूजायं बाणलिंगानि गृह्णद्भिर्त्यैर्नर्मदा
अनर्मदेव निर्मिता । नर्मदायास्तदा बाणलिंगाभावात् ॥
द्रव्य - - - - - ति द्रव्यस्याभावोत्प्रेक्ष - - - ॥ ५० ॥

त्यक्तं तपस्विना (स्वच्छं) यशोशुकमितीव यः ।

गुर्जरं मूलराजाख्यं कंधादुर्गमवीविशत् ॥ ५१ ॥

तपस्विना वराकेण तपोधने(न) च स्वच्छं यशोऽशुकमनेन
त्यक्तमितीव मूलराजनामानं गूर्जरं कंथाख्यं दुर्गं चीरं च स
प्रावेशयत् । तपस्वी चानुकंषार्थं इति कोशः । कंथा च
दुर्गं पुरुषत्वात् ॥ श्लेषोत्था ॥ ५१ ॥

5 सूर्यवंशप्रसूतस्य चन्द्रमंडलनिर्गता ।

तस्य रेवामयी वाहैः कीर्तिर्मलिनिताभवत् ॥ ५२ ॥

सूर्यवंशस्य तस्य वाजिभिश्चन्द्रमंडलान्निर्गता रेवामयी
कीर्तिर्मलिनीकृता ॥ सापङ्गवा । रेवामयीति मयटः
प्रयोगात् ॥ ५२ ॥

10 व्यधादाशापुरीदेव्या भृगुकच्छे स धाम तत् ।

यद्रेवासृष्टसोपानं चन्द्रश्चुंबति मूर्धनि ॥ ५३ ॥

आशापुर्याख्याया देव्याः प्रासादमवटेकरोत् । यद्रेवया
सृष्टसोपानं चन्द्रः शिरसि चुंबति । रेवायाश्चन्द्रप्रभवत्वाच्चन्द्रेण
चुम्बनोक्तिः ॥ प्रतीयमानोत्प्रेक्षा । अत्रवाक्यार्थप्रतीतिसमय

15 एव पदार्थसमन्वयपर्यालोचनया चुंबकस्य तालिकत्वाभावावगमा-
दार्थः संभावनात्मक इवार्थ इति प्रतीयमानोत्प्रेक्षा ॥ ५३ ॥

तस्य दुर्लभराजोभूदनुजो माधवानुगः ।

नारीणां सततं येन हृदये मदनायितम् ॥ ५४ ॥

माधवो मंत्रिविशेषो वसंतश्च सोलुगो यस्य स दुर्लभ-

राजोस्थानुजोभूत् । येन नारीणां चेतसि न मदनायितं ।
काक्का मदनायितमेव बभूवेत्यर्थः । मदस्य नायितं नीयमानस्य
प्रयोजनम् । णिजो णिजन्तान्पुंसके भावे क्तः । नारीणां
स्त्रीणां चेतसि मदनायितं कामवदाचरितम् । कामश्च
5 वसंतानुगो भवति ॥ ५४ ॥

चन्द्रोदयन्ति पूर्वादौ मलये चन्दनन्ति च ।

मन्दरे क्षीरपूरन्ति तुषारन्ति हिमालये ॥ ५५ ॥

(उपमोपक्रमोत्प्रेचाद्वयम् ।)

यशांसि शीतलीकर्तुमिच्छयेव दिगङ्गनाः ।

10 यस्य गोविंदराजाख्यः स तस्मादुदपद्यत ॥ ५६ ॥

युगुलम् ॥ (हेतुत्प्रेचा ।)

यस्य यशांसि कर्त्तुमिच्छयेव पूर्वशैलादिषु चन्द्रोदयादिवदा-
चरन्ति । अत्र हेतुत्प्रेचा । इच्छयेवेति हेतुः । दिगङ्गनाः
शीतलीकर्तुमिच्छयेव ॥ उपमोपक्रमोत्प्रेचा सर्वप्रातिपदिकेभ्यः
15 क्विवित्येक इत्युपमानात्क्विब्विधा - - - माप्रतीतिपर्य-
वसाने त्वपमानस्य प्रकृते संभवौचित्यात्संभावनोत्थाने उत्प्रेचा ॥
स गोविंदराजाख्यस्तस्माज्जातः ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

यस्य वैरिघरट्वात्वं गमितस्य कवीश्वरैः ।

वीर्यशाल्यनुसृत्यर्थमिवाम्नाम्यद्यशो जगत् ॥ ५७ ॥

20 कवीन्द्रैः शत्रुषु घरट्वात्वेन वर्ण्यमानस्य यस्य यशो जगदभ्राम्यत् ।

अत्र फलमुत्प्रेक्ष्यते । वीर्येण शालन्ते ये ते वीर्यशालिनो
वीर्ययुक्ताः शालयश्च तेषामनुसरणार्थम् ॥ फलोत्प्रेक्षा ।
अनुसरणं फलम् ॥ ५७ ॥

तस्माद्वाक्पतिराजेन संभूतमवनौभुजा ।

5 कलिः कृती कृतो येन भू(मिश्च चिदि)वीकृता ॥ ५८ ॥

वाक्पतिराजाख्येन राज्ञा तस्मात्संभूतम् । भावे क्तः । येन
कलिः कृतयुगौ - - - चतुष्टयेन कलावपि धर्मसेवनात् ।
अतो भूमिश्च स्वर्गः संपादितः ॥ अतिशयोक्तिः । कलिकृतयो-
र्भेदेऽप्यभेदोपनिबन्धनात् । एवं भूमिचिदिवयोर्ज्ञेयम् ॥ ५८ ॥

10 अंबाप्रसादमाघाटपतिं यः सेनयान्वितम् ।

व्यसृजद्यशसः पश्चात्पार्श्वं दक्षिणदिक्पतेः ॥ ५९ ॥

आघाटस्य हाडानामनगरस्य पतिं स्वामिनमम्बाप्रसाद-
नामानं ससेनं यमस्य समीपं यशसः पश्चादनयत् । पूर्वमम्बा-
प्रसादो दक्षिणाशापतिनिकटं प्रापितः पश्चात्त्वं यश इति कार्य-

15 कारणयोः पौर्वापर्यरूपकालविध्वंसरूपः कालव्यत्यासः ॥ ५९ ॥

भिन्नमम्बाप्रसादस्य येन च्छुरिकया मुखम् ॥

प्रतापजीवितासृग्भिः सममेव व्यमुच्यत ॥ ६० ॥

येन कर्तृभूतेन च्छुरिकया करणभूतया भिन्नमम्बाप्रसादस्य
मुखं कर्मभूतं प्रतापेन जीवितेनासृजा च समकालं परित्यक्तम् ॥

20 अत्र कार्यकारणयोर्भिन्नकालयोः समकालत्वम् ॥ ६० ॥

गोत्रभिर्द्वैरिभिर्वैरिस्त्रीभिर्दहन इत्यपि ॥

मृत्युर्वैरिभटैर्वैरिपत्तनैः कर्बुरेश्वरः ॥ ६१ ॥

प्रचेता इति नौतिज्ञैस्त्राणकामैः सदागतिः ॥

धनदोर्थिभिरीशश्च भुवा यः प्रत्यपद्यत ॥ ६२ ॥

5

युगुलम् ।

वैरिभिर्यो गोत्रभित्कुलहन्ता वज्रौ चावसितः । वैरि-
स्त्रीभिर्दहनो दहतीति दहनः । तासां हतान् भर्तृननुस-
रन्तीनां दाहहेतुत्वात् । दहनोग्निश्च । मृत्युर्यमः । कर्बुरेश्वरो
नैर्ऋतः शून्यीकरणात् । प्रचेताः प्रकृष्टचेता वरुणश्च । सती
10 आगतिर्यस्य पवनश्च । धनं ददाति वैश्रवणश्च । ईशः स्वामी
पूर्वात्तरदिक्पतिश्च ॥ भेदस्योद्भेदरूपातिशयोक्तिः ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

इन्द्रनीलगलाकाया धत्ते स्फटिकपीठताम् ॥

या मूर्त्तिः शंभवो रात्रौ नाजैषीत् सापि तद्यशः ॥ ६३ ॥

इन्द्रनीलगलाकेवेन्द्रनीलगलाकेत्युपचारात्कलंकः । तस्याः स्फटि-
15 कपीठतां या शंभवो मूर्त्तिर्धत्ते सापि मूर्त्तिः पूर्णचन्द्रो
यद्यशो नाजैषीदतुल्यदित्यर्थः ॥ संवधे * - - - - -
रूपातिशयोक्तिः ॥ ६३ ॥

अद्यापि यो न गतवान्परलोकं यतो भुवा ॥

विस्मृतान्यमहीपालमालया हृदि धार्यते ॥ ६४ ॥

योद्यापि परलोकं न गतः । यतो न्यात्राज्ञो विस्मरंत्या
भुवा लोकेन स्मर्यते । तेभ्योऽस्याधिकगुणत्वादिति भावः ॥
संबन्धे असंबन्धः । परलोकगमनसंबन्धेऽप्यसंबन्धः ॥ ६४ ॥

वीर्यरामः सुतस्तस्य वीर्येण स्यात्स्मरोपमः ॥

5 यदि प्रसन्नया दृष्ट्या न दृश्येत पिनाकिना ॥ ६५ ॥

तस्य पुत्रो वीर्यरामनामा राजा वीर्येण शक्त्या स्मरो-
पमः स्याद्यदौश्वरेण प्रसन्नया दृष्ट्या न वीक्ष्येत ॥ अत्र
स्मरमादृश्यसंबन्धेऽपि पिनाकिप्रसन्नदृष्टिविषयत्वादसंबन्धः ॥
अतिशयोक्तयः ॥ ६५ ॥

10 अद्वितीयो रणास्त्रव्यः शुद्धिमान् रक्षणोचितः ॥
परित्यक्तो महायोधैः सहायत्वे स्थितैरपि ॥ ६६ ॥
अगम्यो यो नरेन्द्राणां सुधादौधितिसुन्दरः ॥
जघ्ने यशश्च यो यश्च भोजेनावन्तिभूभुजा ॥ ६७ ॥
तस्य चामुंडराजेन कनिष्ठेन विनिर्ममे ॥

15 विष्णीर्नरपुरे धाम विष्णुलोके तथात्मनः ॥ ६८ ॥

त्रिभिः कुलकम् ।

अद्वितीयोऽप्रतिमस्तु एकाकी च संग्रामात्प्राप्तः शुद्धो रक्ष्यः
सहायैरपि योधैस्त्यक्तः । राज्ञामगम्यश्चन्द्रमनोहरो यशश्च यो
यश्चोज्जयिनौराजेन हतः । तस्य कनिष्ठेन भ्रात्रा चामुंडराजेन
20 नरपुरे विष्णोः प्रासादो निर्मितः आत्मनश्च धाम स्थानं

विष्णुलोके निर्मितम् ॥ अत्र प्रस्तुतयोर्यस्य यशसश्चाद्विती-
यादिभिर्गुणैरभिसंबंधः । स च केवले न भवतीति हनन-
क्रियया सह निर्दिष्टः । इति गुणरूपधर्माभिसंबंधे तुल्य-
योगिता । तस्येत्यत्र निर्माणक्रिययाभिसंबंधः ॥ ६५ ॥

५ ६७ ॥ ६८ ॥

अभूद्दुर्लभराजोस्माद्यदीयैः प्रतियोगिभिः ॥

चराचराणां लुठितं पादान्ते भूमृतां भयात् ॥ ६९ ॥

यस्य शत्रुभिश्चराचराणां भूमृतां राज्ञां ग्रैलानां च
पादान्ते चरणान्ते प्रत्यन्तपर्वतान्ते च भयाल्लुठितं । भावे क्तः ॥ अत्र
10 चराचरभूमृतोपस्तुताः । तेषां लुठनक्रिययाभिसंबंधः ॥ ६९ ॥

मातंगसंगरे यस्मिन्वीरसिंहेस्तमागते ॥

अपरागोनुतापश्च विधिना प्रापि कर्कशः ॥ ७० ॥

स्नेच्छसंग्रामे यस्मिन्वीरसिंहे हते विधिना निन्दा पश्चा-
त्तापश्च प्राप्तो दुःसहः । मातंगा हस्तिनश्च ॥ अपरागानु-
15 तापयोरप्रस्तुतयोः कार्कश्यगुणाभिसंबंधः । एवं प्रस्तुताप्रस्तुत-
योर्गुणक्रियाभिसंबंधान्तुल्ययोगिता चतुर्विधा ॥ ७० ॥

तस्य विग्रहराजेन भोगीन्द्रेणानुजन्मना ॥

शेषेण च महीभारं त्याजिताः पृथिवीमृतः ॥ ७१ ॥

भोगिनां भोगभाजामहीनां चेन्द्रेण तस्य कनीयसा भ्रात्रा

विग्रहराजेन श्रेष्ठेण च पृथिवीभृतो राजानः शैलाश्च भूभारं
त्याजिताः ॥ ७१ ॥

धृता शिरोभिः श्रेष्ठेण दंष्ट्रया क्रोडमूर्तिना ॥

पृष्ठेन कमठेन्द्रेण स्कन्दैर्दिग्गजमालया ॥ ७२ ॥

५ पादैः पर्वतचक्रेण भुजाभ्यां येन दोष्यता ॥

वसुन्धरा ततो गाढमाश्लेषसुखमन्वभूत् ॥ ७३ ॥

युगलं ॥

शेषादिभिर्मस्तकादिभिरूढा ततो येन भुजाभ्यामूढा भूरा-
लिंगनसुखं प्रापत् ॥ धृतेत्यादि दीपकम् ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

१० हिमान्ता हिमशैलस्य कैलासस्य तटत्विषा ॥

विवभौ गंगया मेरोः कीर्त्या भूरस्य भूभृतः ॥ ७४ ॥

विवभाविति मध्यस्थेन क्रियापदेन सर्ववाक्यानां संबंधः ॥
दीपकत्रयम् ॥ ७४ ॥

चकार दुर्बलानां यः क्षमामागस्विनामपि ॥

१५ जह्ने निरपराधानामपि यश्च बलीयसाम् ॥ ७५ ॥

सापराधानामपि दुर्बलानां क्षमां क्षान्तिमकरोत् । निर-
पराधानामपि बलवतां क्षमां भूमिमहरत् ॥ कारकदीपकम् ।
क्षमेति कारकस्य साधारणत्वात्कर्मकारकम् ॥ ७५ ॥

मालवेनोदयादित्येनास्मादेवाप्यतोन्नतिः ॥

२० मंदाकिनीहृदादेव लेभे पूरणमब्धिना ॥ ७६ ॥

उदयादित्येन मालवदेशीयेनास्मादेवोन्नतिरुदयः प्राप्ता ।
समुद्रेण गंगाङ्गदादेव पूरणं प्राप्तम् ॥ ७६ ॥

सारंगाख्यं तुरंगं स ददौ यस्मै मनोजवम् ॥
नह्युच्चैःश्रवसं क्षीरसिंधोरन्यः प्रयच्छति ॥ ७७ ॥

5 मनोवज्जवो यस्य तं सारंगनामानमश्वं स मालवाय ददौ ॥
क्षीरसमुद्रादन्य उच्चैःश्रवसं न ददाति ॥ ७७ ॥

जिगाय गूर्जरं कर्णं तमश्वं प्राप्य मालवः ॥
लब्धानूरुः सूर्यरथं करोति व्योमलंघनम् ॥ ७८ ॥

तमश्वं प्राप्य मालवः कर्णाख्यं गूर्जरमजयत् । सूर्यरथं
10 लब्धानूरुराकाशलंघनं करोति ॥ ७८ ॥

पृथ्वीराजः सुतस्तस्मात्ततो(भूदतिसारमृत् ?) ॥
कुमारब्रह्मचारौ हि कुमारो मद(नान्तकात् ?) ॥ ७९ ॥

— — — — — जात्यः पुत्रो जातः । कामवैरिणः
कुमारः कुमारब्रह्मचारौ भवति ॥ ७९ ॥

15 रात्रौ रात्रौ चतुर्बाहुः स एवाद्दृश्यतानुगैः ॥
ऐरावणं विनान्यः कश्चतुर्दन्तो निशम्यते ॥ ८० ॥

अनुगैः प्रतिनिशं स एव चतुर्बाहुर्दृष्टः । ऐरावणादन्यः
कश्चतुर्दन्तः श्रूयते ॥ दृष्टान्ताः । पूर्वत्र साधर्म्येणोत्तरत्र
वैधर्म्येण ॥ ८० ॥

पुष्करे ब्रह्मकोशाप्तिं चुलुक्यशतसप्तकम् ॥

हत्वा ब्रह्मस्वकामानां कुलक्षयमुपादिशत् ॥ ८१ ॥

ब्रह्मकोशस्य ब्रह्मस्वस्याप्तिर्हरणं यस्मात्तत् । चुलुक्यानां
जनविशेषाणां शतसप्तकं हत्वा स राजा ब्रह्मस्वहरणाभिला-
5 षिणां कुलक्षयमुपादिशत् । ब्रह्मस्वहृत्कश्चिन्नासौदित्यर्थः ॥ ८१ ॥

अच्छिन्नं सोमनाथाध्वन्यन्नसत्तं चकार यत् ॥

इदं मोक्षार्थिनां भोगमानुषंगिकमब्रवीत् ॥ ८२ ॥

सोमनाथतौर्यमार्गेऽनवरतमन्नसत्तं चकारयद्विदमन्नसत्त-
करणं मोक्षार्थिनामानुषंगिकफलमकथयत् । अवश्यं मोक्षः
10 प्राप्तव्यः । प्रसंगादन्नमपि प्राप्तमित्यर्थः ॥ ८२ ॥

तस्मादजयराज्ञोभूददान्यो यद्वदान्यतः ॥

सर्वरत्नप्रदात्सिन्धोः कल्पवृक्षस्य जन्म तत् ॥ ८३ ॥

दातुस्तस्माद्दाताऽजयराजाख्यो जातो यत्तत्समस्तरत्नदातुः
समुद्रात्कल्पवृक्षस्य जन्म भवति ॥ ८३ ॥

15 श्लाघ्यः सल्लह इत्यस्य जयते नाम पार्थिवैः ॥

बीजाक्षरत्रयच्छायां धत्ते शक्तित्रयस्य यत् ॥ ८४ ॥

अस्य सल्लह इति नाम राजभिर्जयते यत्तच्छक्तीनां
त्रयस्य बीजाक्षरत्रयशोभां धत्ते । तन्नामजपनाच्छक्तिप्राप्तिर्भ-
वतीत्यर्थः ॥ ८४ ॥

सौम्येन मालवपतिः सुल्हणो येन दौष्टिमान् ।

शमितोम्बुधरग्रस्तदवाग्निश्रियमानशे ॥ ८५ ॥

येन सौम्येन शमितो मालवेन्द्रः सुल्हणो मेघशमितदा-
वाग्निस्थितिं प्रापत् ॥ ८५ ॥

5 कीर्तिपुष्पविकासं यं रुद्धवान् कल्पशाखिनाम् ॥

मन्ये तमेव मोक्तुं यः पुरंदरपुरं ययौ ॥ ८६ ॥

स राजा कल्पवृक्षाणां यशः पुष्पविकासं यं रुद्धवांस्तमेव
मोक्तुं स स्वर्गं गत इति जाने । कल्पवृक्षेभ्योतिदातासीत्
इत्यर्थः । अतः कल्पतरूणां यस्तेन कीर्तिविकामो रुद्ध

10 आसीत्तस्मिन्प्रमीते (मृते) स उत्पन्नः ॥ ८६ ॥

पद्मसंबन्धिनीं लक्ष्मीं रिपुरामामुखानि यत् ॥

अत्याजयदिति प्राप्ता गुणिभिः श्रीर्न कैस्ततः ॥ ८७ ॥

स राजा वैरिस्त्रीमुखानि पद्मशोभामत्याजयदित्यतो
गुणिभिर्गुणवद्भिः पद्मैश्च कैर्न श्रीः प्राप्ता ॥ निदर्शने व्दे ।

15 संभवदस्तुसंबन्धाऽसंभवदस्तुसंबन्धा च । अन्यत्रान्यसंबन्धिनीं काया-
मन्यः कथं दधतीति नास्ति वस्तुसंबन्धः ॥ ८७ ॥

स दुर्वर्णमयैर्भूमिं रूपकैः पर्यपूरयत् ॥

तां सुवर्णमयैस्तत्र कविवर्गस्त्वपूरयत् ॥ ८८ ॥

दुर्वर्णं रौप्यं । दुष्टावर्णाश्च । तन्मयै रूपकैर्दीनारविशेषै-

नाटकैश्च स भुवमपूरयत् । सौवर्णैः सुवर्णमयैः शोभनाक्षर-
मयैश्च कविवर्गस्तामपूरयत् ॥ ८८ ॥

कीर्त्तिं स वर्तमानानां भटैर्जह्रे जयप्रियैः ॥
अतीतानागतानां तु रूपकैरजयप्रियैः ॥ ८९ ॥

५ जयः प्रियो येषां तैर्भटैः करणभूतैर्वर्तमानानां कीर्त्ति-
महरत् । अजयस्य राज्ञः प्रियै रूपकैर्दीनारविशेषैर्भूतानां
भाविनां च राज्ञां कीर्त्तिमहरत् ॥ ८८ ॥

सोमलेखा प्रियाप्यस्य प्रत्यहं रूपकैर्नवैः ॥
कृतैरपि न संस्पर्शं कलंकेन समासदत् ॥ ९० ॥

10 तस्य प्रिया सोमलेखाख्या राज्ञी चन्द्रलेखा च प्रत्यहं
नवैः कृतै रूपकैर्दीनारविशेषैर्मृगैश्च हेतुभिः कलंकेन पापेन
लाङ्घनेन च स्पर्शं न प्रापत् ॥ व्यतिरेकभेदः । उपमानादु-
पमेयस्याधिकगुणत्वेन न्यूनगुणत्वेन वा भावात् ॥ ९० ॥

भाग्यैः समं समुत्पन्नं प्रजाभिः सह लालितम् ॥
15 वर्धितं मुकुटैः साकमर्णोराजमसूत सा ॥ ९१ ॥

भाग्यादिभिः सह समुत्पन्नत्वादिलक्षणविशिष्टमर्णोराजं
पुत्रं साजनयत् ॥ भाग्यानां तदुत्पत्तिकारणत्वे तदुत्पत्तेर्वा
भाग्यकारणत्वे सहभावोपनिबन्धात्कार्यकारणविध्वंसरूपातिश-
योक्तिसहिता सहोक्तिः ॥ ९१ ॥

कीर्त्या विमलया साकं देवी सा भूपतेः प्रिया ॥
प्रतापेण सहोग्रेण प्रियः पुत्रश्च सोऽभवत् ॥ ८२ ॥

शुद्धया कीर्त्या साकं समं सा देवी राज्ञः प्रियाभूत् ।
एवमूत्तरार्धपि योज्यम् ॥ सहोक्तौ ॥ ८२ ॥

5 लक्ष्मीर्विनाभिमानेन कीर्त्तिर्दुर्गता विना ॥
बभौ श्रीखण्डवल्लीव तस्य भोगमृता विना ॥ ८३ ॥

निर्गवा श्रीनिन्दारहिता च कीर्त्तिस्तस्य बभौ यथा
सर्पत्यक्ता चन्दनलता ॥ ८३ ॥

कवित्वेनेव पाण्डित्यं द्रविणेनेव यौवनम् ॥
10 ननाश तद्रिपुबलं विना दीप्तेन तेजसा ॥ ८४ ॥

यथा कवित्वेन विना पाण्डित्यं यथा च धनेन विना
यौवनं तथा तेजसा विना तच्छुबलं नष्टम् ॥ विनोक्तौ ॥ ८४ ॥

लोभप्रदोषमुक्तास्य कमला कमलिन्यभूत् ॥
औदार्यातपहीनासीत्तस्य प्र - - नां तु सा ॥ ८५ ॥

15 लोभाख्येन प्रकृष्टेन दोषेण निशारंभेण च मुक्ता
श्रीः पद्मिन्यासीत् । तस्य वैरिणां सा श्रीरौदार्यमेवातपस्तेन
हीना पद्मिन्यासीत् ॥ गम्या विनोक्तिः । मुक्तहीनादिपदै-
र्विनार्थस्य द्योतितत्वात् ॥ ८५ ॥

तापिताः प्राक् प्रतापेन विचारेण विशोभिताः ॥

अनुरक्तास्ततः पश्चाद्यशसाच्छादिता दिशः ॥ ६६ ॥

पूर्वं प्रतापेन तापिताः । ततो विचारेण व्यवहारपरि-
 च्छेदेन विशोभिताः । अतोनुरक्ता दिशो यशसाच्छादिताः ।
 5 अग्निना तापिताश्चिराकज्ज्वादिना (?) शोभिताः गैरिका-
 दिना रंजिताः सुवर्णविकृतयो वस्त्रा — — — — —
 भ्रसव्यवहारप्रतीतिः ॥ ८६ ॥

विमुक्ता निखिलैर्दोषैर्निचिता निखिलैर्गुणैः ॥

शिवभक्तिरभूद्यस्य सदा हृदयहारिणी ॥ ६७ ॥

10 दोषैरनवधानादिभिस्त्यक्ता गुणैर्युक्ता शिवभक्तिर्यस्य मनो-
 हरा सदाभूत् ॥ निर्दोषादिधर्मारोपात् साध्वीव्यवहार-
 प्रतीतिः ॥ ८७ ॥

नयसिक्ता प्रतापेन क्रमात्पल्लवितोद्गमा ॥

विकसत्कौत्तिपटला फलत्पुण्यपरम्परा ॥ ६८ ॥

15 दत्ताशौः शमितक्लान्तिक्षुत्पिपासैः सदाध्वगैः ॥

लक्ष्मीर्यद्भुजमारूढा वृद्धिं शास्त्राशतैर्गता ॥ ६९ ॥

युगलम् ॥

प्रथमं नयेन सिक्ता । ततः प्रतापेन पल्लववान् कृत उद्गमो

यस्याः सा । विकसत् कीर्तिपटलं * यस्याः सा । फलन्ती
फलवदाचरन्ती पुण्यपरम्परा यस्याः सा ॥ ९८ ॥

श्रमिताः क्लान्तिक्षुत्पिपासा येषां तैरध्वगैः सन्मार्गगामिभि-
र्दत्ताशौर्यद्भुजार्जिता श्रीः शाखानां प्रकाराणां शतैर्दृष्टिं गता ॥
5 सेकादिकार्यारोपात् पल्लवितत्वादिधर्मारोपाच्चोभयारोपेण
लक्ष्या लताव्यवहारप्रतीतिः ॥ ९९ ॥

स्तनद्रयांगमिथुना भ्रमद्वमरमालिकाः ॥

श्रीसन्मुखाम्बुजा वापीर्यो ददौ सुरसद्मसु ॥ १०० ॥

स्तनवदाचरन्ति कूजन्ति च रथाङ्गमिथुनानि यासु ताः ।
10 कचवदाचरन्त्यः स्फुरन्त्यश्च भ्रमरमालिका यासु । श्रीमन्ति
मुखाम्बुजानि यासां ता वापीर्देवग्रहेषु योदात् ॥ अत्रैपम्यस्य
गर्भत्वम् ॥ १०० ॥

चन्द्रचंदनकमुर्पूरक्ताहारविरोधिनी ॥

सुदूरवर्त्तिनी यस्य कीर्तिः पांडुत्वमाययौ ॥ १०१ ॥

15 चन्द्रादीनां विरोधिनी न्यकुर्वती सुदूरे वर्तमाना कीर्तिः
पांडुत्वं शुभ्रत्वमापत् ॥ अत्र विरहिणीव्यवहारप्रतीतेर्लौकिके
लौकिकव्यवहारसमारोपः ॥ १०१ ॥

मनोज्ञत्वेपि नाचुम्बि स्वमुखेन कदा चन ॥

स्वच्छंदं तेन यत्की - - - - ॥ १०२ ॥

* कुसुर्द was the original reading which has been later changed
into पटलं ।

तेन राज्ञा कीर्तिर्मनोज्ञत्वेपि सति स्वमुखेन न कदा-
चिद्यत्सृष्टा तेन स्वकी - - - - - ॥ १०९ ॥*

- - - - - ॥

- - - - - पुरुषार्थं कृतार्थताम् ॥

- 5 करणानि कर्माणि संश्रयो यस्य तं भोगं बुद्धिबलेनैव
भजन् द्रष्टा सर्वव्यवहारसाक्षी स देवः स्वं पुरुषार्थं कृतार्थताम-
नयत् । शत्रूञ्जितवानित्यर्थः । सांख्यदर्शनवादिनामात्मा
सप्तधा बुद्ध्यहंकारतन्मात्रापञ्चकत्वेन प्रकृतेर्जातं विकारमस्पृशन्
मूलप्रकृतिसंगतां बुद्धिं भासयन्श्चिच्छायया च्छुरयन् बुद्धिमुखे-
10 नैव करणसंश्रयं चक्षुरादीन्द्रियाश्रयं भोगं भजन् बुद्धिमुखेनैव
पुरुषार्थं पुरुषविवेकरूपं कृतार्थतां नयति ॥ नीतिशास्त्रीये
वस्तुनि सांख्यशास्त्रीयवस्तुसमारोपः ॥

स्फुरत्प्रज्ञाबलोत्साहसिद्ध्युपायगुणोदया ॥

सर्वांगसुन्दरौ यस्य नीतिर्वल्लभतां ययौ ॥

- 15 स्फुरन्तः प्रभावबलोत्साहा येषु ते । सिद्ध्युपायगुणोदया
यस्यां सा । सिद्ध्यो भूम्यादीनामुपायाः सामादयः । उदया

* Henceforward to the end of the Canto, most of the leaves are wanting in the lower portion, which should contain about 5-7 lines of the original. Consequently henceforward at regular intervals there would be short lacunæ of 2 or 3 verses with the Com. thereon.

आत्मादीनाम् । तथा सर्वांगेषु स्वास्थादिषु सुंदरी यस्य
 नीतिर्वल्लभतां^१ अद्वेयत्वं ययौ । तन्नौतिरन्येषां कांच्छणीयाभू-
 दित्यर्थः । स्फुरद्भिः प्रज्ञाबलोत्साहैः सिद्धौ वशीकरणे उपा-
 यात्मकानां गुणानामुदयो यस्यां सा । प्रज्ञादिभिर्भूवशी-
 5 कृतेत्यर्थः ॥ अत्र नौतिशास्त्रप्रसिद्धे वस्तुनि नायिकाव्यवहार-
 प्रतीतिः ॥

भुसत्तायामुदात्तो यः परस्मै पदमग्रहीत् ॥

अनुदात्तो रिपुस्तस्य भूप्राप्तांवात्मने पदी ॥

भुविभुसत्तायां प्रशस्तत्वे साम्राज्ये सति यः परस्मै परार्थं
 10 पदं त्राणमग्रहीत् । यत उदात्तः । — — — — —
 — — — — — आत्मार्थमेव पदी प — — —
 — — — — — ॥*

— — — — — मन्त्रपेक्षा दैवबलनियोगज्ञस्य मित्रबलापेक्षा
 15 च नाभूत् । यः षट्संख्यकं प्रमाणं जानाति वि— — गं च
 वेत्ति स ईश्वरं सर्वज्ञं नापेक्षते ॥ लौकिके मीमांसाव्यवहार-
 समारोपः ॥

सपक्षे दृष्टे नास्ते विपक्षे यज्जडात्मनि ॥

तत्प्रतापाग्निमान्भूभृदेतौ धूमेऽन्वमायि यः ॥

जनेन सपक्षे स्वाश्रिते विषये यद्दृष्टे । स्वपक्षस्योपकारकं
कुर्वन्त्यदृष्ट इत्यर्थः । जडात्मनि विपक्षे शत्रौ यन्नास्ते अप-
कारप्रवृत्त एवाभूदित्यर्थः । तत्तस्माद्धेतावायुधे खड्गे सत्यां(?)
भूभृत्प्रतापाग्निमाननुमितः । धूमे इति हेतोरारोपः । काल-
त्वेन धूमानुकारात् । सपक्षे महानसे दृष्टः । विपक्षे जलादौ
न दृष्टः । ततो भूभृत्पर्वतो धूमे हेतौ कारणे लिंगे सत्य-
ग्निमाननुमीयते ॥ लौकिके तर्कव्यवहारसमारोपः ॥

10 अहार्यलंघनैस्त्यक्तरसास्वादैः सदूषणैः ॥

येन पीनसितावस्थां कौर्तिरत्याजि वैरिणाम् ॥

येन राज्ञां शत्रूणां कीर्तिः पीनां मितं चावस्थां
त्याजिता — — । लघुर्मलिना च कीर्तिः कृतेत्यर्थः । यतः
अहार्याणां पर्वतानां लंघनैरारोहावरोहैस्त्यक्तो रमाया भूमे-
15 रास्वादो यैः करणभूतैः । मह दूषणेन दोषेण यानि तैः ।
अहार्यैरपरिहार्यैश्च लंघनैर्भोजनविच्छेदादिभिः । त्यक्तो रसानां
(मधु)रादीनामास्वादो येषु । तथा सच्छोभनमूषणं मरीचादि-
र्येषु तैर्हेतुभिर्भिषजा पीनसिता प्रतिश्चावत्त्वं तस्या अव—
—जते । गतिबोधेति नियमात् (Pāṇini i. 4. 52) कौर्ति-
20 शब्दस्य कर्मत्वम् । तस्य च त्यजौत्यकर्मण्युत्पन्नेन— — — —
— — — — ॥ लौकिके आयुर्वेद— — — — ॥

| | | |
|--|----|----|
| Chokavartika (English), Fasc. 1-7 @ 1/4/- each .. | 8 | 12 |
| *Cranta Sutra of Apastamba (Text), Fasc. 2-17 @ -/10/- each .. | 10 | 0 |
| *Cranta Sutra of Āṅkhyāna, Vol. I, Fasc. 1-7; Vol. II, Fasc. 1-4; Vol. III, Fasc. 1-4; Vol. IV, Fasc. 1 @ -/10/- each .. | 10 | 0 |
| Cri Bhaṣyam (Text), Fasc. 1-3 @ -/10/- each .. | 1 | 14 |
| Cri Cantinatha Charita, Fasc. 1-4 .. | 2 | 8 |
| Dāna Kriyā Kaumudī, Fasc. 1-2 @ -/10/- each .. | 1 | 4 |
| *Dasa Rupa (Text), Fasc. 2-3 @ -/10/- each .. | 1 | 4 |
| Dharmabindu, Fasc. 1 @ -/10/- each .. | 0 | 10 |
| Dictionary of the Kashmiri Language, Part I .. | 15 | 0 |
| Gadadhara Paddhati Kālasāra, Vol. I, Fasc. 1-7 @ -/10/- each .. | 4 | 6 |
| Ditto Ācārasāra, Vol. II, Fasc. 1-4 .. | 3 | 2 |
| Gobhiliya Gṛhya Sūtra, Vol. I .. | 3 | 2 |
| Ditto Vol. II, Fasc. 1-2 @ 1/4/- each .. | 2 | 8 |
| Ditto (Appendix) Gobhila Parisista .. | 2 | 0 |
| Ditto Gṛhya Sangraha .. | 0 | 10 |
| Haralata .. | 1 | 14 |
| Institutes of Vishnu (Text), Fasc. 1-2 @ -/10/- each .. | 1 | 4 |
| Kala Madhava (Text), Fasc. 1-4 @ -/10/- each .. | 2 | 8 |
| Kāla Viveka, Fasc. 1-7 @ -/10/- each .. | 4 | 6 |
| Karmapradip, Fasc. 1 .. | 1 | 4 |
| Kātantra, Fasc. 1-6 @ -/12/- each .. | 4 | 8 |
| Katha Sarit Sagara (English), Fasc. 1-14 @ 1/- each .. | 14 | 0 |
| Kavi Kalpa Lata, Fasc. 1 .. | 0 | 10 |
| Kavindravacana Samuccayah .. | 3 | 8 |
| Kiranaṇa, Fasc. 1-3 @ -/10/- .. | 1 | 14 |
| Kurma Purana, Fasc. 1-9 @ -/10/- each .. | 5 | 10 |
| *Lalita Vistara (Text), Fasc. 2-6 @ -/10/- each .. | 3 | 2 |
| * Ditto (English), Fasc. 1-3 @ 1/- each .. | 3 | 0 |
| Madana Pārijāta, Fasc. 1-11 @ -/10/- each .. | 6 | 14 |
| Mahā-bhāṣya-pradīpodyota, Vol. I, Fasc. 1-9; Vol. II, Fasc. 1-12; Vol. III, Fasc. 1-10 @ -/10/- each .. | 19 | 6 |
| Ditto Vol. IV, Fasc. 1-3 @ 1/4/- each .. | 3 | 12 |
| Maitra, or Maitrayaniya Upanishad, Fasc. 1 .. | 0 | 10 |
| Manutikā Sangraha, Fasc. 1-3 @ -/10/- each .. | 1 | 14 |
| Mārkaṇḍeya Purana (English), Fasc. 1-9 @ 1/- each .. | 9 | 0 |
| *Markandeya Purana (Text), Fasc. 4-7 @ -/10/- each .. | 2 | 8 |
| *Mīmāṃsa Darśana (Text), Fasc. 9, 11-17 @ -/10/- each .. | 5 | 0 |
| Mirror of Composition (English), Fasc. 1-4 @ 1/- each .. | 5 | 0 |
| Mugdhabodha Vyākaraṇa, Vol. I, Fasc. 1-7 @ -/10/- each .. | 4 | 6 |
| Nirukta (2nd edition), Vol. I, Fasc. 1-2 @ 1/4/- .. | 2 | 8 |
| *Nirukta (old edition), Vol. I, Fasc. 1, 2, 4, 5, 6; Vol. II, Fasc. 5, 6; Vol. III, Fasc. 1-6; Vol. IV, Fasc. 1-8 @ -/10/- each .. | 13 | 2 |
| Nityācārapaddhati, Fasc. 1-7 @ -/10/- each .. | 4 | 6 |
| Nityācārapradīpa, Vol. I, Fasc. 1-8, Vol. II, Fasc. 1-4 @ -/10/- each .. | 7 | 8 |
| Nṛsiṅha Tapani of Atharva-Veda (Text), Fasc. 1-3 @ -/10/- each .. | 1 | 14 |
| Nyāyabindutikā, Fasc. 1 @ -/10/- each .. | 0 | 10 |
| Nyāya Vartika Tatparya Parisudhi, Fasc. 1-4 @ -/10/- each .. | 2 | 8 |
| *Nyayavartika (Text), Fasc. 2-7 @ -/10/- each .. | 3 | 12 |
| Nyayasarah .. | 2 | 0 |
| Padumāwati, Fasc. 1-6 @ 2/- each .. | 12 | 0 |
| *Parācāra Smṛti, Vol. I, Fasc. 2-8; Vol. II, Fasc. 1-6; Vol. III, Fasc. 1-6 @ -/10/- each .. | 11 | 14 |
| Parācāra, Institutes of (English) @ 1/- each .. | 1 | 0 |
| *Paricista Pravan (Text), Fasc. 5 @ -/10/- each .. | 0 | 10 |
| Pariksamukha Sūtram .. | 1 | 0 |
| Prabandhacintāmaṇi (English), Fasc. 1-3 @ 1/4/- each .. | 3 | 12 |
| Prākṛita-Pāṇḍalam, Fasc. 1-7 @ -/10/- each .. | 4 | 6 |
| Prākṛita Lakṣhaṇa .. | 1 | 8 |
| Prthvirāja Vijaya, Fasc. 1-2 .. | 1 | 4 |
| Rasarnavam, Fasc. 1-3 .. | 3 | 12 |
| Ravisiddhanta Manjari, Fasc. 1 .. | 0 | 10 |
| Saddarśana-Samuccaya, Fasc. 1-3 @ -/10/- each .. | 1 | 14 |
| Sadukti-karma-mṛita, Fasc. 1 @ -/10/- each .. | 0 | 10 |
| Samaraicca Kāha, Fasc. 1-7 @ -/10/- each .. | 4 | 6 |
| *Samavada -Sanhita, Vol. I, Fasc. 1-4, 6-10; Vol. 2, Fasc. 2-6; Vol. 3, Fasc. 1-7; Vol. 4, Fasc. 1-6; Vol. 5, Fasc. 1-8 @ -/10/- each .. | 21 | 14 |
| *Sankarā Vijaya (Text), Fasc. 2-3 @ -/10/- each .. | 1 | 4 |
| *Sankhya Aphorisms of Kapila (English), Fasc. 2 .. | 1 | 0 |
| *Sankhya Pravachana Bhaṣya, Fasc. 2 .. | 0 | 10 |
| Sāṅkhya Sūtra Vṛtti, Fasc. 1-4 @ -/10/- each .. | 2 | 8 |
| Ditto (English), Fasc. 1-3 @ 1/- each .. | 3 | 0 |
| Siva Parināśa Fasc. 1-2 .. | 1 | 1 |

| | | |
|--|----|----|
| Śrāddha Kriyā Kaumudī, Fasc. 1-6 @ -/10/- each .. | 5 | 10 |
| Śrauta Sūtra of Latyayana (Text), Fasc. 1-9 @ -/10/- each .. | 1 | 14 |
| Sri Surisarvasvam, Fasc. 1-3 @ -/10/- each .. | 1 | 0 |
| Suṣrūta Saṁhitā (English), Fasc. 1 @ 1/- each .. | 2 | 8 |
| Suddhi Kaumudī, Fasc. 1-4 @ -/10/- each .. | 1 | 0 |
| Sundaranandam Kavyam .. | 1 | 4 |
| Suryya Siddhanta, Fasc. 2 @ 1/4 - .. | 1 | 0 |
| Syainika Sastra .. | 18 | 2 |
| *Taittiriya Saṁhitā (Text), Fasc. 17-45 @ -/10/- each .. | 4 | 6 |
| *Taittiriya Aranyaka of Black Yajur Veda (Text), Fasc. 5-11 @ -/10/- each .. | 13 | 2 |
| *Taittiriya Brahmana (Text), Fasc. 3-24 @ -/10/- each .. | 1 | 14 |
| Taittiriya Pratisakhya (Text), Fasc. 1-3 @ -/10/- each .. | 3 | 12 |
| *Tandya Brahmana (Text), Fasc. 13-18 @ -/10/- each .. | 17 | 8 |
| Tantra Vārtika (English), Fasc. 1-14 @ -/1/4 .. | 21 | 14 |
| *Tattva Cintāmani, Vol. I, Fasc. 2-9; Vol. II, Fasc. 4-10; Vol. III, Fasc. 1-2; Vol. IV, Fasc. 1; Vol. V, Fasc. 1-5; Part IV, Vol. II, Fasc. 1-12 @ -/10/- each .. | 3 | 12 |
| Tattva Cintāmani Didhiti Prakas, Fasc. 1-6 @ -/10/- each .. | 7 | 8 |
| Tattva Cintāmani Didhiti Vivriti, Vol. I, Fasc. 1-8; Vol. II, Fasc. 1-3, Vol. III, Fasc. 1 @ -/10/- each .. | 1 | 4 |
| *Tattvarthadhigama Sūtram, Fasc. 2-3 @ -/10/- each .. | 1 | 4 |
| *Tattvarthadhigama Sūtram, Fasc. 2-3 @ -/10/- each .. | 2 | 8 |
| Tirthacintāmoni, Fasc. 1-4 @ -/10/- each .. | 1 | 14 |
| Trikāṇḍa-Māṇḍanā, Fasc. 1-3 @ -/10/- .. | 3 | 2 |
| Tulsi Satsai, Fasc. 1-5 @ -/10/- .. | 8 | 12 |
| Upamita-bhava-prapañca-kathā, Fasc. 1-14 @ -/10/- each .. | 4 | 6 |
| *Uttara Nāishadha (Text), Fasc. 6-12 @ -/10/- each .. | 6 | 0 |
| Uvāsagadāsāo (Text and English), Fasc. 1-6 @ 1/- Vajjalaggam, Fasc. 1 .. | 0 | 10 |
| Vallāla Carita, Fasc. 1 @ -/10/- .. | 0 | 10 |
| *Varaha Purāṇa (Text), Fasc. 2-14 @ -/10/- each .. | 8 | 2 |
| Varṣa Kriyā Kaumudī, Fasc. 1-6 @ -/10/- .. | 3 | 12 |
| Vāyu Purāṇa (Text), Vol. I, Fasc. 1-6; Vol. II, Fasc. 1-7 @ -/10/- each .. | 4 | 6 |
| *Vedānta Sūtras (Text), Fasc. 7-13 @ -/10/- each .. | 5 | 10 |
| Vidhāna Pārijāta, Fasc. 1-8; Vol. II, Fasc. 2 @ -/10/- .. | 5 | 0 |
| Ditto Vol. II, Fasc. 2-5 @ 1/4/- .. | 0 | 10 |
| Ditto Vol. III, Fasc. 1 .. | 0 | 10 |
| Vishahitam, Fasc. 1 .. | 4 | 6 |
| Vivādaratnākara, Fasc. 1-7 @ -/10/- each .. | 3 | 12 |
| Vrhat Svayambhū Purāṇa, Fasc. 1-6 @ -/10/- .. | 2 | 8 |
| *Vrhanaradiya Purāṇa (Text), Fasc. 3-6 @ -/10/- each .. | 5 | 10 |
| Yogaśāstra, Fasc. 1-5 .. | 3 | 0 |
| *Yoga Sūtra of Patanjali (Text and English), Fasc. 3-5 @ 1/- each .. | | |

Tibetan Series.

| | | |
|---|----|---|
| Amarakosah, Fasc. 1-2 .. | 4 | 0 |
| Amartika Kamdhenuh .. | 1 | 0 |
| Bauddhastotrasangraha, Vol. I .. | 2 | 0 |
| A Lower Ladakhi version of Kesarsaga, Fasc. 1-4 @ 1/- each .. | 4 | 0 |
| Nyayabindu (A Bilingual Index) .. | 1 | 0 |
| Nyayabindu of Dharmakīrti, Fasc. 1-2 .. | 2 | 0 |
| Pag-Sam Shi Tin, Fasc. 1-4 @ 1/- each .. | 4 | 0 |
| Prajña Pradipah .. | 1 | 0 |
| Rtogs brjod dpag hkhri Śiñ (Tib. & Sans. Avadāna Kalpalatā) Vol. I, Fasc. 1-11; Vol. II, Fasc. 1-11 @ 1/- each .. | 22 | 0 |
| Sher-Phyin, Vol. I, Fasc. 1-5; Vol. II, Fasc. 1-3; Vol. III, Fasc. 1-6 @ 1/- each .. | 14 | 0 |
| Tirac-Kun-Din .. | 1 | 0 |

| | | |
|--|----|---|
| Notice of Sanskrit Manuscripts, Fasc. 1-34 @ 1/- each .. | 34 | 0 |
| Ditto ditto (Palm-leaf and selected paper MSS.) @ 3/- each .. | 6 | 0 |
| Nepalese Buddhist Sanskrit Literature, by Dr. R. L. Mitra .. | 5 | 0 |
| Report on the Search of Sanskrit MSS., 1895-1900, 1901-1905, and 1906-1911 @ -/8/- each .. | 1 | 8 |

N.B.—All Cheques, Money Orders, &c., must be made payable to the "Treasurer, Asiatic Society," only.

12-6-18.

Books are supplied by V.P.P.

BIBLIOTHECA INDICA :
A
COLLECTION OF ORIENTAL WORKS

PUBLISHED BY THE
ASIATIC SOCIETY OF BENGAL.
NEW SERIES, No. 1447.

PRTHVĪRĀJA VIJAYA.

A SANSKRIT EPIC WITH THE COMMENTARY OF
JONARĀJA.



BY
S. K. BELVALKAR, M.A., PH.D.
FASC. III.

CALCUTTA :
PRINTED AT THE BAPTIST MISSION PRESS
AND PUBLISHED BY THE
ASIATIC SOCIETY, 1, PARK STREET.
1922.

ASIATIC SOCIETY OF BENGAL,

NO. 1, PARK STREET, CALCUTTA,

AND OBTAINABLE FROM

The Society's Agents—

MESSRS LUZAC & Co., 46, Great Russell Street, London, W.C.

M. PAUL GEUTHNER, 13, Rue Jacob, Paris, VI.

*Complete copies of those works marked with an asterisk * cannot be supplied as some of the Fasciculi are out of stock.*

BIBLIOTHECA INDICA.

Sanskrit Series.

| | Rs. | As. |
|---|-----|-----|
| Açvavaidyaka, Fasc. 1-5 @ -/10/- each | 3 | 2 |
| Advaitachintā Kaustubha, Fasc. 1-4 @ -/10/- each | 2 | 8 |
| *Agni Purana (Text), Fasc. 4-14 @ -/10/- each | 6 | 14 |
| *Aitareya Aranyaka of Rig-Veda (Text), 2-4 @ -/10/- each | 1 | 14 |
| Aitarēya Brāhmaṇa, Vol. I, Fasc. 1-5; Vol. II, Fasc. 1-5; Vol. III, Fasc. 1-5, Vol. IV, Fasc. 1-8 @ -/10/- each | 14 | 6 |
| Aitareyalocana | 2 | 0 |
| Amarakosha, Fasc. 1-2 | 4 | 0 |
| *Anu Bhasyam (Text), Fasc. 2-5 @ -/10/- each | 2 | 8 |
| Anumana Dīdhiti Praśarini, Fasc. 1-3 @ -/10/- each | 1 | 14 |
| *Aphorisms of Sandilya (English), Fasc. 1 @ 1/- | 1 | 0 |
| Aśaśāhasrikā Prajñāpāramitā, Fasc. 1-6 @ -/10/- each | 3 | 12 |
| *Ātharvana Upanishads (Text), Fasc. 2-5 @ -/10/- each | 2 | 8 |
| Ātmatattvaviveka, Fasc. 1-3 | 1 | 14 |
| Avadāna Kalpalatā (Sans. and Tibetan), Vol. I, Fasc. 1-13; Vol. II, Fasc. 1-11 @ 1/- each | 24 | 0 |
| Bālaṇi Bhaṭṭi, Vol. I, Fasc. 1-2; Vol. II, Fasc. 1 @ -/10/- each | 1 | 14 |
| Bauddhastōtrasaṅgraha | 2 | 0 |
| Bṛādhāyana Śrauta Sūtra, Fasc. 1-3; Vol. II, Fasc. 1-5; Vol. III, Fasc. 1-4 @ -/10/- each | 7 | 8 |
| *Bhamati (Text), Fasc. 5-8 @ -/10/- each | 2 | 8 |
| Bhasavṛitty | 0 | 10 |
| Bhāṭṭa Dipikā, Vol. I, Fasc. 1-6; Vol. II, Fasc. 1-2 @ -/10/- each | 5 | 0 |
| Bodhicaryāvatāra of Çāntideva, Fasc. 1-7 @ -/10/- each | 4 | 6 |
| Brahma Sūtras (English), Fasc. 1 @ 1/- | 1 | 0 |
| Bṛihaddevatā, Fasc. 1-4 @ -/10/- each | 1 | 8 |
| Bṛihaddharma Pūraṇa, Fasc. 1-6 @ -/10/- each | 3 | 12 |
| Çatadūṣaṇi, Fasc. 1-2 @ -/10/- each | 1 | 4 |
| Catalogue of Sanskrit Books and MSS., Fasc. 1-4 @ 2/- each | 8 | 0 |
| *Çatapatha Brāhmaṇa, Vol. I, Fasc. 1-7; Vol. II, Fasc. 1-5; Vol. III, Fasc. 1-7; Vol. V, Fasc. 1-4 @ -/10/- each | 14 | 6 |
| Ditto Vol. VI, Fasc. 1-3 @ 1/4/- each | 3 | 12 |
| Ditto Vol. VII, Fasc. 1-5 @ -/10/- | 3 | 2 |
| Ditto Vol. IX, Fasc. 1-2 | 1 | 4 |
| Çatasahasrikā-prajñāpāramitā, Part I, Fasc. 1-18, Part II, Fasc. 1 @ -/10/- each | 11 | 14 |
| *Çaturvarga Chintāmani, Vol. II, Fasc. 4-25; Vol. III, Part I, Fasc. 1-18, Part II, Fasc. 1-10 Vol. IV, Fasc. 1-6 @ -/10/- each | 35 | 0 |
| Ditto Vol. IV, Fasc. 7-14 @ 1/4/- each | 1 | 4 |
| Ditto Vol. IV, Fasc. 8e, 1 @ -/10/- | 1 | 14 |
| Çlokaṇṭikā (English), Fasc. 1-7 @ 1/4/- each | 8 | 12 |
| *Çrauta Sūtra of Apastamba (Text), Fasc. 1-7 @ -/10/- each | 7 | 8 |
| *Çrauta Sūtra of Çāṅkhāyana, Vol. I, Fasc. 1-7; Vol. II, Fasc. 1-4; Vol. III, Fasc. 1-4; Vol. IV, Fasc. 1-4 @ -/10/- each | 10 | 0 |
| Çri Bhaṣhyam (Text), Fasc. 1-2 @ -/10/- each | 1 | 14 |
| Çri Çāntinātha Charita, Fasc. 1-4 | 2 | 8 |
| Dāna Kṛyā Kaumudī, Fasc. 1-2 @ -/10/- each | | |

मङ्क्ता यशसि यं भूमिराश्लिष्टाजनि रत्नसूः ।
रजस्वलास्वभावोयं विधिनैनोपपादितः ॥

यस्य यशसि निमज्ज्य यमालिङ्ग्य भूमिः रत्नसूजाता ।
5 विधिनैवायं रजस्वलास्वभाव उपपादितः । रजस्वला चतुमती
सपांशुश्च ॥

लालनाताडनविदामनुरज्यन्ति योषितः ।
अतो यशःप्रतापाभ्यां भूमिस्तेन (वशौ)कृता ॥

लालना प्रीतिस्तां ताडनं च ये विदन्ति तेषां स्त्रियोनु-
10 रज्यन्ति । अतो हेतोस्तेन यशःप्रतापाभ्यां भूमिर्वशीकृता ॥
समासोक्तयः ॥

बुद्धिमद्भिर्बुद्धशास्त्रैः सत्यवा - - - - - ।
व्यायामिभिर्बलीयोभिः सहायैर्यो विदिद्युते ॥

बुद्धिमत्त्वादिविशिष्टैः सहायैर्यो दीप्तः ॥ परिकरः । विशे-
15 षाणां साभिप्रायत्वात् ॥

अहिदिषा प्रसिद्धेन गोमण्डलधरेण च ।
स्वैरावतारोचितेन हरिणा यः समोऽभवत् ॥

अहिः कालियनागो वृत्रासुरश्च । अहिर्भार्तृव्यश्च । तद्दिषा ।
गावो धेनवो नेत्रादि च । गौर्भूमिश्च । तन्मण्डलधरेण । स्वैरं

* See note on p. 158.

स्नेच्छयावतारेषु मत्स्यादिरूपग्रहणेषूचितेन । स्वश्चासावैरावत
 ऐरावणस्तेन रोचितेन । स्वात्मौया ऐरी इरायां भूमौ भवा
 भूमिविषया अवता रचकता तथा रोचितो यो राजा हरिणा
 विष्णुना इन्द्रेण च समोऽभवत् ॥ विशेष्यस्य विशेषाणां च
 5 साम्याच्छेषः । अत्राच्युतेन्द्रयोरप्रस्तुतयोः श्लेषः ॥

यः सदन्तायुधकरान् परिहर्तव्यपद्धतीन् ।
 अत्यन्तगजनान् मत्तान् मातङ्गानजयद्रणे ॥

यो मातङ्गान् स्नेच्छांश्च युद्धेऽजयत् । सदन्तानि शोभन-
 धाराणि आयुधानि ————— करेण च
 10 सहितान् । तथा त्याज्यमार्गान् । स्नेच्छानां दुराचारत्वात् । —
 ————— ॥

स्नेच्छानां ————— ।

————— ॥*

————— नत्वम् । पदानां सुप्ति-
 15 ङन्तानां भङ्गेनांशांशिक — भेदेन । नीरसा रसवर्जिताः ।
 भिन्नः स्वरः उदात्तादिर्येषाम् । तथा स्वापाः सुलभाः शब्दा
 न तु लक्ष्यादर्थो यैस्ते यस्य द्विषः श्लेषा इवासन् ॥ अत्र
 शत्रुश्लेषयोः प्रस्तुताप्रस्तुतयोः श्लेषः ॥ श्लेषत्रयम् ॥

अत्यन्तशुद्धपक्षाणां स्वहंसानामिवान्तरम् ।

यत्पूर्वजन्मपुण्यानामज्ञासीत् केवलं विधिः ॥

यस्य पूर्वजन्मनि पुण्यानामन्तरं विधिरेव ज्ञातवान् ।
अत्यन्तं शुद्धः पक्षः सिद्धान्तो येषाम् । हंसपक्षे पक्षाः पत-
5 त्राणि ॥ अत्र शुभवस्तुसंपत्तिलक्षणे कार्यं प्रस्तुते तत्करण-
पूर्वजन्मपुण्याभिधानादप्रस्तुतप्रशंसा ॥

अनादित्यमिव व्योम तामसा इव वासराः ।

अलोचनेव जनता जज्ञे यस्य प्रयाणके ॥

यस्य प्रयाणे सति आकाशादीनां सूर्यरहितत्वमिव
10 जातम् ॥ अत्र सेनारजोवर्णने प्रस्तुतेऽनादित्यत्वादितत्कार्याभि-
धानेनाप्रस्तुतप्रशंसा ॥

रजन्यामपि पद्मिन्यः कुमुदिन्यो दिनेपि यत् ।

नापुष्पान्यस्य साम्राज्ये जाड्यमेवात्र कारणम् ॥

रात्रावपि पद्मिन्यस्तथा दिवाप्युत्पलिन्यो यत्र विकसिता-
15 स्तत्र जाड्यमेव हेतुः ॥ तद्राज्ये जडा एव न विकसिता इति
सामान्ये प्रस्तुते तद्विशेषकुमुदिनीपद्मिन्यभिधानेनाप्रस्तुत-
प्रशंसा ॥

वर्धमानं स्वकुलजैः केषांचित् पुण्यकर्मणाम् ।

कल्पान्तस्थायितामेति धनं स्थाने निवेशितम् ॥

पूर्वपुरुषैर्वर्धमानं स्थाने निवेशितं सत् कल्पान्तं तावत्स्थैर्यं
 केषांचिद्भाग्यवतामेति ॥ अत्राज-----
 ते सामान्याभिधानेनाप्रस्तुतप्रशंसा ॥

----- ।

5 ----- पृथिव्यामपि ----- ॥*

----- जा नगरं कृतवान् । येषु
 काव्येषु तन्नगरं न वर्णितं तानि काव्यानि धन्यानि न
 भवन्ति ॥ तान्यधन्यानीत्यत्र वैधर्म्येणाप्रस्तुतप्रशंसा । इदं काव्यं
 धन्यमिति प्रस्तुतार्थप्रतीतिः ॥

10 भवत्यजयमेरुत्वं सार्थं यस्य सुरालयैः ।
 न हि पुण्यप्रभावेन तदस्त्यव न यद्भवेत् ॥

यस्य नगरस्याजयमेरुभावः सार्थको भवति देवावासेः ।
 मेरुर्हि देवावासः । एतमेव विशेषं सामान्येन समर्थयते । न
 यद्भवेत्तन्नास्ति । सर्वमेव भवेदित्यर्थः पुण्यप्रभावात् ॥ अर्था-
 15 न्तरन्यासः । विशेषस्य सामान्येन समर्थनात् ॥

वर्जन्ति स्थानमाहात्म्यादधमा अविगीतताम् ।
 वेश्यानामपि यद्यत्र वास्तवं रागमेलकम् ॥

अधमाः स्थानमहिम्नाविगीततामविप्रलम्भकत्वं यान्ति ।
वेश्यानामपि विप्रलम्भकानां रागः सहजोऽभूत् ॥ सामान्यस्य
विशेषेण समर्थनादर्थान्तरन्यासः ॥

धौर्यत्रावैति नोत्कर्षि शिवपादयुगं विना ।
5 उत्का एव हि सर्वेऽस्मिन्वृषयो दर्शनं प्रति ॥

शिवपादद्वयादन्यद्वस्तु सोत्कर्षं बुद्धिर्न जानाति । एतदेवो-
त्तरार्धेन कारणभूतेन समर्थयते । शिवपाददर्शनार्थं सर्वे
वृषयो यस्मात् सोत्कर्षाः ॥ कारणमृषीणामुत्कर्षितत्वं समर्थक-
मित्यर्थान्तरन्यासः ॥

10 यत्र प्रत्यक्षफलदः सेवितोऽग्निः सुकर्मणाम् ।
धूमो हि घनतामेत्य भजते वृष्टिहेतुताम् ॥

यत्र शोभनकर्मणां फलदोऽग्निर्भवति । तथाहि । यज्ञादिषु
धूमो वृष्टिहेतुर्भवति । अत्र अग्निसेवनस्य कार — — — — —
— समर्थकम् ॥ अर्थान्तरन्यासः ॥

15 उच्चैयताराकुसुमा वन्द्य - - - - - ।
- - - - - चश्रव्यसप्तर्षितृतीयस्वरा ॥

उच्चैतुं शक्यानि ताराकुसुमानि य — — — — —
— किनी हृदो यस्याम् । तथा श्रोतुं शक्यः श्रव्यस्तृतीये
सवने स्थाने स्वरो — — — — — ॥*

समायां यदि काठिन्यं शैत्ये तापकता द्विषाम् ।

अपालक - - - - - ॥*

- - - - - ।

- - - - - ति नोत्थानं यत्र संपूर्णपादपि ॥

5 अन्यत्र देशे चयाणां पादानां भङ्गेऽपि धर्म — — — —

— — — — पलायते इत्यर्थः । यत्र देशे चतुष्पादपि धर्म

उत्थानं निर्गमनं नेच्छति । तत्रैव तिष्ठतीत्यर्थः ॥ विभावना

विशेषोक्तिश्च । अनवस्थितेर्हेतुः पादमामगौ । तदभावेऽपि

तत्फलं धर्मानवस्थानमुत्पन्नमिति विभावना । तथा उत्थानस्य

10 कारणं संपूर्णपादत्वम् । तत्सङ्गावेष्टुत्थानाभावस्य फलस्योत्पत्ति-

रिति विशेषोक्तिः ॥

आयव्ययेषु कालैक्यं यत्र सर्वस्य दृश्यते ।

व्ययस्त्वादौ सुकृतिनामायस्तस्यानुयात्रिकः ॥

यत्र सर्वस्य लोकस्य धनोत्पत्तित्यागेषु समकालत्वं दृश्यते ।

15 अर्जयन्तो जना व्ययं कुर्वन्तीत्यर्थः । यत्र सुकृतिनामादौ

व्ययस्तस्य व्ययस्योत्पत्तिरनुयात्रिकी । पश्चाद्भूनागम इत्यर्थः ॥

अतिशयोक्ती । आयः कारणं व्ययः कार्यं भवति । कारण-

कार्ययोः पौर्वापर्यं प्रसिद्धम् । तत्र त्वायव्ययोस्तुल्यकालत्वम् ।

तथोत्तरार्धे आयव्ययोः कारणकार्ययोः पौर्वापर्यविपर्ययः ॥

पौराणां हृदये यत्र संनिधत्ते चिलोचनः ।

अन्तस्तु पौरनारीणां जाज्वलीति मनोभवः ॥

यत्र जनानां चित्ते हरः संनिधानं करोति । कामस्तु
पौरस्त्रीचित्ते ज्वलतितराम् ॥ असंगतिः । हरः कामदाहस्य
5 कारणम् । अत्र तु हरः पौरचित्ते सन्निहितः । कामस्तु पौर-
स्त्रीचित्ते ज्वलतीति कार्यकारणयोर्विभिन्नदेशत्वात् ॥

यत्र स्त्रीणामपाङ्गेभ्यः पूर्याङ्गो जायते स्मरः ।

युवभिर्जीर्यमाणोपि रूपेण लभते बलम् ॥

यत्र पुरस्त्रीणां कटाक्षेभ्यः पूर्णाङ्गः कामो जायते । तथा
10 तरुणैर्जि - - - पेण कामो बलं लभते ॥ विषमम् । सर्वत्र
कारणानुगुणं कार्यं प्रसिद्धम् । - - - - -
कामस्य रूपहेतुकबललाभ - - - ॥*

- - - - - यत्र राजशिखामणिः ।

विश्वस्य मान्यतां लब्धुं सेव्यते परमेश्वरः ॥

15 यत्र रक्तैर्विरक्तैर्वा - - - मणिः राजा चन्द्रः शिखामणि-
र्यस्य । परमेश्वरः सेव्यते । विश्वकर्द्वकं मानं प्राप्तुम् ॥ - - -
विकल्पस्य । विचित्रस्य विफलप्रयत्नलक्षणत्वात् । अत्र हि मान-
लाभार्थं सेवाख्यस्य प्रयत्नस्य विपरीतफलनिष्पत्तिहेतुत्वम् ।
सेवाकारिणां हि मानहानिः ॥

भूपैर्भुजेपि यच्चत्यैर्धार्यते भूः ससागरा ।

कीर्तिः स्वच्छतनुस्तेषां न माति भुवनेष्वपि ॥

यच्चत्यै राजभिर्भूमिः ससमुद्रा भुजचक्रेऽपि धार्यते ।
 स्वच्छा शुधा सूक्ष्मा च तनुर्यस्याः सा कीर्तिर्भुवनेषु न वर्तते ॥
 5 अधिकद्वयम् । अधिकस्याश्रयाश्रयिणोरनानुरूप्यलक्षणत्वात् । अत्र
 ह्याश्रयस्य भुजस्याश्रयिभूताया भूवस्तुच्छलमहत्वाभ्यामनानु-
 रूप्यम् । भुवनानामाश्रयाणां कीर्तस्तदाश्रयीभूताया महत्त्व-
 तुच्छत्वाभ्याम् ॥

धर्मो विवर्धते यच्च वास्तव्यानां विभूतिभिः ।

10 धर्मेण च विवर्ध्यन्ते वास्तव्यानां विभूतयः ॥

पौरश्रीभिर्धर्मो वर्धते धर्मेण च पौरश्रियो वर्धन्ते ॥
 अन्योन्यम् । परस्परं वर्धनक्रियाजननात् ॥

वापीकूपतटाकेषु प्रपासु विविधासु च ।

दिवमप्युपयातानां दृश्यते यच्च जीवनम् ॥

15 वाण्यादिषु जीवनं जलं प्राणश्च स्वर्गगतानां दृश्यते ॥
 विशेषः । अनाधारमाधेयमित्यादिलक्षणत्वात् । अत्र जीवस्या-
 धारः शरीरिणः । ते 'स्वर्गं' गतास्तथापि जीवनं दृश्यते इत्य-
 नाधारमाधेयम् ॥

त्रिदिवे दिवि पाताले कीर्ति - - - दिक्षु च ।

20 यदीयानां नरे - - - - - स्थिता ॥

खर्गादिषु कीर्तिरेकरूपा समासमं युगपन्स्थिता ॥ वि - -

----- ॥*

----- गैः पुनः राजभिः
कीर्तिरनुपाख्यते ॥ व्याघातः । उत्पत्तिविनाशयोरेकोपाय-
5 त्वात् । अत्र राजभ्य एव वृषोत्सर्गैरेवोत्पत्तिः । तैरेव तेभ्य
एव च विनाशः ॥

अबला इति बाध्यन्ते सबलैरन्यदेशजैः ।

तेनैव हेतुना यत्र रक्ष्यन्ते राजभिः परे ॥

अन्यत्र राजभिरबलत्वाद्राजानो बाध्यन्ते । तस्मादेव हेतो-
10 स्तत्र तैः शत्रवो रक्ष्यन्ते ॥ व्याघातः । व्याघातायै संभाव्यमान-
स्याबलत्वस्य बाधाविरुद्धरक्षणनिष्पादकत्वेन समर्थनात् ॥

यत्र वीर्यं प्रतापस्य प्रतापः कारणं श्रियः ।

श्रीधर्मस्य नरेन्द्राणां धर्मो भोगापवर्गयोः ॥

यत्र वीर्यादयः प्रतापादीनां हेतवः ॥ कारणमाला ॥

15 अर्थो धर्मानुगो यत्र कामश्चार्थानुगो नृणाम् ।

कामस्य शिवकामानां मोक्षोर्प्यनुगतां गतः ॥

यत्र श्रेयस्कामानां धर्माद्यनुगा अर्थादयः ॥ एकावली ।
अर्थादीनां धर्माद्यनुगतत्वात् ॥

यौवनेन वपुः स्त्रीणां यच्च रूपेण यौवनम् ।
रूपं कान्तिविशेषेण स लावण्येन गर्जति ॥

यत्र यौवनादिभिर्वपुरादयो गर्जन्ति ॥ मालादीपकम् ।
यौवनादीनामुत्तरोत्तरवपुरादिगर्जनाख्यगुणावहत्वात् ॥

5 शंभुलोकत्रये सारं तस्य सारं चिनेचता ।
तत्रापि चन्द्रमास्तस्य यत्कान्तावदनीपमा ॥

ईश्वरादयो लोकत्रयादौ सारभूताः ॥ सारः । उत्तरो-
त्तरोत्कर्षात् सारः ॥

कनकाञ्जरजश्छन्ना वातायनविहारिणः ।
10 मानवैर्यत्र सेव्यन्ते स्वर्गङ्गावौचिमारुताः ॥

यत्र वातायनगता नाकनदीपवना मनुष्यैः सेव्यन्ते यतो
हेमाञ्जरजःपूर्णाः ॥ काव्यलिङ्गम् । कनकाञ्जेत्यादेः पदार्थत्वात् ।
काव्यलिङ्गस्य च हेतोर्वाक्यप — — — — — ॥

द्रष्टुं दिग्भ्यो दशभ्यो यदपर्याप्तदृगष्टकम् ।
15 - - - - - ॥

— — — — —
— — — — — ॥*

- - - - हेतोर्वाक्यार्थत्वात् । पूर्वस्रोक्तेऽपर्याप्तदृग्गृह्यक इति
विशेषणस्य पदार्थत्वाभिमानात् ॥

सर्वस्वहारिणस्त्वस्तो वरुणो वाडवाद्भुवम् ।
5 यत्कूपान् सेवते तोयं गिरिदुर्गे कुतोऽन्यथा ॥

वरुणस्य सर्वस्वं समुद्रस्तं दहतो वाडवाग्नेर्भुवं भीतो वरुणो
यत्कूपान् सेवते । वरुणत्रासस्य साध्यस्य साधनमाह । अन्यथा
यदि न वरुणस्य भयं स्यात्तर्हि तद्गिरिदुर्गे तोयं कथं स्यात् ।
वरुणस्य जलाधिपतित्वादिति भावः ॥ अनुमानम् । साधनात्
10 साध्यप्रतीतिरनुमानस्य लक्षणम् । अत्र गिरौ जलसंभवात्
त्रासानुमानम् ॥

वरुणादिमहेन्द्रान्तमूर्तयो यत्र पार्थिवाः ।
शिष्टदिक्पतिमूर्त्तित्वं गृह्णतेऽन्यपुरीः प्रति ॥

वरुणादारभ्येन्द्रं तावत्पञ्च लोकपालास्तेषां मूर्तयस्तेजोऽंशा
15 येषां तथाविधास्तत्र राजानो भवन्ति । तत्र वरुणत्वमशेष-
जनाप्ययनात् । वायुत्वं बलित्वात् । कुबेरत्वं धनदत्वात् । शर्वत्वं
सर्वोत्कर्षात् । इन्द्रत्वमखण्डिताज्ञत्वात् । यत्रत्या राजानोऽव-
शिष्टा ये दिक्पतयो वक्त्रियमनैर्ऋत्यास्तद्भावं शत्रुनगरीषु
गृह्णन्ति । अग्नित्वं तासां दाहात् । यमत्वं शत्रुमारणात् ।
20 नैर्ऋतत्वं शत्रुपुरीनिर्वसत्वकारणात् ॥ अनुमानम् ॥

स्वर्गं पालननिर्माणवर्णनैर्देववेश्मनाम् ।

ध्रुवं पश्यति यत्तयो राजा चित्रकरः कविः ॥

पालनादिभिः राजादयः स्वर्गं गच्छन्ति (? पश्यन्ति) ॥

यथासंख्यम् । उद्दिष्टानामर्थानां क्रमेणानुनिर्देशात् ॥

5 व्यर्थो यशःप्रतापाभ्यां राज्ञां यत्तेन्दुभास्करौ ।

धत्तोऽर्धरात्रमध्याह्ने च्छत्वं देववेश्मनाम् ॥

यत्र राज्ञां यशःप्रतापाभ्यां हेतुभ्यां व्यर्थौ निष्प्रयोजनौ
सन्तौ चन्द्रार्कौ अर्धरात्रे मध्याह्ने च देवगृहाणां कृत्रभावं
धत्तः ॥ प्रतीपम् । यशःप्रतापाभ्यां चन्द्रार्कयोराक्षेपात् ॥

10 - - - - - ।

- - - - - ॥

- - - - - ॥*

यत्कान्ताकेशसंस्कारधूपधूमः सुधासितम् ।

श्यामीकरोति सततं सौधं सितकरं ततः ॥

15 . यत्स्त्रीकेशसौगन्धार्थं धूमः पूर्वं सौधं ततश्चन्द्रं श्यामी-
करोति ॥ पर्यायः । क्रमेणैकस्थानेकस्मिन्ननेकस्यैकस्मिन्नव-
स्थानात् ॥

यथाधत्ते निशि मरुत् सौधेन्दुमणिशीकरैः ।

घर्मोर्दविन्दून्वामाणां गण्डयोश्चन्द्रकान्तयोः ॥

यच्च रात्रौ स्त्रीणां वायुरिन्दुसुन्दरयोर्गण्डयोर्घर्मजलकणान्
गृह्णाति । कैः । सौधचन्द्रकान्तकणैः ॥ परिवृत्तिः । चन्द्रकान्त-
5 जलकणैः खेदाम्बुग्रहणात् समम् ॥

पञ्चभिर्मार्गणैः पौर्ण्यैः स्मरो हरति कामिनाम् ।

हृत्काञ्चनाम्बुजवनं वियोगाग्निपरीक्षितम् ॥

पुष्पमयैः पञ्चभिर्बाणैः कामो विरहाग्नौ परीक्षितं चित्त-
हेमपद्मवनं हरति ॥

10 सर्वस्वमपि संत्यज्य स्वगृहाद्यच्च मानिनः ।

यशो गृह्णन्ति तद्यस्य परे चर्वितचर्वकाः ॥

यस्य यशसः चर्विते चर्वणेऽपि कृते चर्वका भवन्ति ।
तद्यशः सर्वस्वं दत्त्वा मानिनो गृह्णन्ति ॥ परिवृत्तिः । सर्वस्वे-
नाधिकेन यशसो न्यूनस्य ग्रहणेन न्यूनत्वात् । पूर्वत्र पञ्चभिः
15 शरैः हेमपद्मवनहरणादधिकम् ॥

अपावनं धनं यच्च सर्वथा त्यागिनां गृहे ।

अत्यागः स्तूयते मौग्ध्यादालाभिर्यच्च कामिनाम् ॥

अपगतमवनं रक्षणं त्यागाभावो यस्य तद्धनं त्यागिनां
दाहृणां गृहे भवति । बालाभिः कामिनामत्यागः अतिशये-

नापराधः स्त्रयते मुग्धत्वात् ॥ परिसंख्या । अपावन - - - -
 - - त्यागिधनादावेव नियमात् । त्यागिधन - - वा - - - -
 दन्य - - - - - ॥*

- - - - - देपि यत्र श्रोत्रमहाज्वरः ।

5 स्वस्याकीर्तिर्भवेद्येन तत्तुव्यवहरन्ति के ॥

परस्यापवादेऽपि सतां महाज्वरः कर्णयोर्भवति । येन
 स्वस्यापयशो भवेत्तत्के कुर्वन्ति ॥ वाच्या सैव । यत्र पर-
 निन्दापि दुर्वचा तत्र स्वस्याकीर्तिहेतुभूतव्यवहारपरिहार
 आपतित इति शब्दोपात्तार्थापत्तिरिति सैव वाच्या ॥

10 जहौ प्रागुपमानत्वं चरमं चोपमेयताम् ।
 यस्य संवर्धमानस्य संपद्भिरमरावती ॥

प्रतीपम् ॥ अधिकगुणत्वसंभावनयोपमानत्वेन कल्पिताऽम-
 रावती गुणानामन्तरपरीक्षणे सति पूर्वमुपमान(त्व)मत्यजत् ।
 पश्चादुपमेयताम् । अतिन्यूनगुणत्वादिति भावः ॥

15 पुरान्तरेषु घनया श्वेतन्ते ज्योत्स्नया यदा ।
 तदा नीलन्ति यत्सौधान्यसितागुरुधूम्यया ॥

अन्यनगरे पौर्णमास्यादौ सौधानि श्वेतन्ति श्वेतानि
 भवन्ति । तत्र तु तदैव कालागुरुधूमेन यत्सौधानि नीलानि

भवन्ति ॥ गुणक्रियाममुच्चयः । नीलनश्वेतनयोर्गुणक्रिययोर्यौग-
पद्यम् ॥

शौलालंकरणं रूपं त्यागालंकरणं धनम् ।

श्रुतालंकरणं मेधा यच्च पुण्यानि शंसति ॥

5 यत्र रूपादीनि शौलाद्यलंकृतानि पुण्यसूचकानि भवन्ति ॥
सद्योगः । रूपादीनां सतां शौलादिभिः सङ्घिर्योगात् ॥

सचौरैर्दण्डकश्मापैरवर्षैर्देवमातृकैः ।

निर्धनैर्बहुदुर्भिश्चैर्दुर्जयं तत् पुरान्तरैः ॥

सचौरत्वादिविशेषणविशिष्टैरन्यनगरैस्तज्जेतुं न शक्यम् ॥
10 असद्योगः । पुरान्तराणामसतां चौरादिभिरसङ्घिर्योगात् ॥

धर्मो दम्भं लोभमर्थः कामोऽस्थानप्रसक्तताम् ।

मोक्षश्चार्चनवैमुख्यं दिशन् यच्च न हस्यते ॥

अन्यपुरेषु धर्मादयो दम्भादिकलुषिता हस्यन्ते । - - - -
- - - - - सदसद्योगः । सतां धर्मादीनां - - - - -
15 - - - - - ॥

- - - - - *
- - - स्य यस्य राज्ञः प्रतिकारसामर्थ्यं सति सत्संबन्धिनां
पराभवात् ॥

* See note on p. 158.

यत्र मेघाः पिधीयन्ते गवाक्षागुरुधूम्यया ।
सौदामिनीभिस्तेषां च हेमहर्म्यमरौचयः ॥

जालनिर्गतकालागुरुधूमैर्यत्र मेघाच्छाद्यन्ते । विद्युद्भिश्च
खर्णहर्म्यांशवः ॥ मीलितद्वयम् । वस्तुना वस्त्वन्तरनिगूहनात् ॥

5 अभिन्नैकेन्दुभूरिस्त्रीमुखवातायनाः क्षपाः ।
समरामाननाम्भोजदीर्घिका यत्र वासराः ॥

अभिन्नः सदृशः । एकोऽप्रतिमल दन्दुर्येषां तानि । भूरीणि
स्त्रीमुखानि येषु तानि वातायनानि यासु ताः क्षपा
भवन्ति । समानि रामाननानि येषां तान्यम्भोजानि यासु ता
10 दीर्घिका येषु ते वासरा भवन्ति ॥ सामान्यम् । प्रस्तुतानां
मुखानामप्रस्तुतैश्चन्द्रपद्मगुणैः साम्येन कात्स्न्योपनिबन्धनात् ॥

मध्येपि शुभ्रः शुभ्राश्मवेश्मरश्मिभरैः शशौ ।
यत्र सर्वाङ्गनीलो वा महानीलग्रहांशुभिः ॥

यत्र स्फटिकग्रहरश्मिसमूहैः चन्द्रः कलङ्कस्थानेऽपि शुभ्रो
15 भवति । इन्द्रनीलग्रहरश्मिभिः सर्वाङ्गेषु नीलो भवति ॥
तद्गुणः । अन्यदीयसितासितगुणग्रहणात् ॥

न शक्यते यदांनेतुं कलिना मलिनात्मताम् ।
तमसा चन्द्रबिम्बं हि सविशेषं प्रकाशते ॥

कलिना यन्नगरं मालिन्यं नेतुं न शक्यते । यतः चन्द्र-
20 स्तमसात्यर्थं शोभते ॥ अतद्गुणः । कलिगुणाननुहारात् ॥

गृह्येत त्रिगुणं त्वत्तो न स्यादग्रहणं यदि ।

प्रत्यादिशन्ति शम्बल्यो यस्मिन्नित्याप्तकामुकान् ॥

----- कुट्टिन्यो य-----प्राप्तान् कामुकानिति प्रत्यादि-
शन्ति निषेधयन्ति । इतिर्हेतौ । यदि तत्कर्तृकं तत्कर्मकमग्रहण-
5 ----- त्यजदित्यर्थः । तदा त्वत्सकाशान्मया त्रिगुणं
गृह्येत । परं सा तु त्वां न गृह्णाति । मद्भस्ते त्वया न्यस्तं
यद्वस्तु तन्न गृह्णातीत्यर्थः ॥ उत्तरम् । अत्र हि उत्तरात् प्रश्न
उत्तरीयते । कामुकैर्हि कुट्टिणीनामुक्तमेतत् । इदं वस्तु तस्यै
देहि । सा मत्समीपं त्वयानीयतामिति । ततः कुट्टिनीभिः
10 पूर्वोक्तमुत्तरं दत्तम् । अस्मादुत्तरात् प्रश्नोन्नयनम् । त्वत्त इति
कामुकपरामर्शकमेकवचनं तु प्रत्येकं पृथग्भाषणात् । कुट्टिन्यो
हि अभिसारिकाणां गौरवरक्षणार्थं जनानुत्तरयन्ति ॥

कं यत्र पुष्करं गत्वा वरिवस्यन्ति साधवः ।

कं पुष्कराद्गृहायातं स्पृष्ट्वा शुद्धिं च मन्वते ॥

15 पुष्करं तीर्थं गत्वा साधवः कं ब्रह्माणमुपासते । पुष्कर-
तीर्थाद्गृहायातं कं जलं स्पृष्ट्वा शुद्धिं मन्वन्ते । कमिति प्रश्ने
कं ब्रह्माणं कं जलमित्युत्तरं द्वितीयम् ॥

यत्र कर्णोत्पलन्यस्तहस्तं दीपावलोकिनौ ।

दृष्ट्वा वधूः प्रियोपान्ते सखीभिः प्रतिमुच्यते ॥

20 दीपशमनार्थं कर्णोत्पलेषु न्यस्ता हस्ता यत्रैव कृत्वा दीपा-

नवलोकयन्ती नारी भर्तृनिकटे दृष्ट्वा सखीभिः प्रतिसुच्यते ॥
सूक्ष्मम् । रिरंमारूपसूक्ष्मार्थप्रकाशनात् ॥

शीतः पाणिरपथ्योयं सद्यो मे निरगाज्वरः ।
यच्च रामा प्रियस्पर्शप्रस्वेदमिति निह्रुते ॥

5 इदानीं मम ज्वरो निर्गतोऽतस्तवायं पाणिः शीतत्वा-
दपथ्य इत्यनेन वचसा प्रियास्पर्शेन प्रस्वेदं रामाच्छादयति ॥
व्याजोक्तिः । स्वेदेनोद्भिन्नस्य प्रियस्पर्शसुखस्य ज्वरनिर्गमनेन
निगूहनात् ॥

मा प्रवेक्ष्यति कोप्यन्तर्मा शब्दः श्रूयते बहिः ।
10 वाक्यं यच्च नवोढानामिति कान्तैर्निर्गद्यते ॥

नवोढा वक्ति मा हठादिकं कुरु । यतः कोप्यन्तः प्रवे-
क्ष्यति । तथा मा युङ्क्ष्व यतो बहिः शब्दः श्रूयते । एतदेव
कान्ता अनुवदन्ति । मा निषेधं कुरु यतः कोप्यन्तः प्रवेक्ष्यति ।
काकुप्रयोगेण न प्रवेक्ष्यतीत्यर्थः । मा निषेधं कुरु यतो बहिः
15 शब्दः श्रूयते । काकुप्रयोगेण न श्रूयते इत्यर्थः ॥ वक्रोक्तिः ।
काकुप्रयोगात् ॥

कोप्यन्तर्मे नते स्नेहः कोपवन्तं त्यजान्तरात् ।
नतोहमिति मानिन्यो रम्यन्ते यच्च कामिभिः ॥

ममान्तः स्नेहस्तव नास्ति । यद्वा तत्कर्तव्यः स्नेहो मेऽन्त-
20 र्मेयं विषयभूतायां न भवतीति । मानिनीनामुक्तिः । कामि-

भिस्त्वन्यथा योजनं कृतम् । त्वं - - - - - कोपवान् । मे मम
नते प्रणते स्नेहः इति त्वयोक्तम् । तत् कोपमन्तराच्चित्तात्
त्यज । तत्राहं नतः प्रणामकारौत्युक्त्वा कामिभिर्मानिन्यो
रस्यन्ते । रमिर्णिजन्तः । मे इत्येकवचनमेकैककामिन्यभि-
5 प्रायात् ॥ श्लेषेण सैव । सैवेति वक्रोक्तिः ॥

यत्र स्तनंधयान् हस्ते रत्नदीपं जिघृक्षतः ।
दृष्ट्वा हाहेति संभ्रान्ता धात्री चेटैर्विहस्यते ॥

रत्नदीपं हस्ते गृह्यतो बालान् दृष्ट्वा हाहेति वदन्ती
संभ्रान्ता धात्री चेटैरुपहस्यते ॥ स्वभावोक्तिः ॥

10 निपौडितस्य पूर्णेन्दोः सुधया पङ्किलाङ्गुली ।
यत्र मृत्युजितः पादौ भाव्येते भावितैः पुनः ॥

पौडितस्यासनभूतस्य पूर्णचन्द्रस्यामृतेनाद्राङ्गुली मृत्युजितो
भगवतः पादौ भक्तैः प्रणिधीयेते ॥ भाविकम् । अत्यन्त-
विप्रकृष्टस्य भगवदङ्गुलिपङ्किलत्वस्य प्रत्यक्षायमाणत्वात् ॥

15 च्युतकर्पूरकस्तूरीपांसुला पण्यवीथिका ।
कुरुते पाण्डुरश्यामवाससो यन्निवासिनः ॥

च्युताभ्यां कर्पूरकस्तूरीभ्यां पांसुला यत्राट्टवीथी । यस्मि-
न्निवासिनः पौरान् सितासितवस्त्रान् करोति ॥ उदात्तम् ।
सातिशयसमृद्धिवर्णनात् ॥

पारेसिन्धु विजिग्ये यां मध्येसिन्धु बध्नाच्च याम् ।
रामः कृष्णश्च नगरौ ते दास्ये यस्य नोचिते ॥

समुद्रपारे यां नगरौ लङ्कां रामो जितवांस्तथा समुद्र-
मध्ये नगरौ द्वारवतीं कृष्णो यां बध्नात् ते नगरौ यस्य
5 दास्यत्वयोग्ये न भवतः ॥ द्वितीयमुदात्तम् । लङ्काजय-
द्वारिकानिर्माणयोर्महापुरुषचरितयोरङ्गभूतत्वात् ॥

चन्द्राशुस्मेरधम्मिल्लमल्लिकानां प्रियान् प्रति ।
सौधेषु गीतं रामाणां यत्रालिभिरनूद्यते ॥

चन्द्रांशुभिः स्मेराः शुभ्रतरा धम्मिल्लमल्लिका यासां स्त्रीणां
10 प्रियानुद्दिश्य गीतं सौधेषु सखीभिरनु पश्चादुद्यते गीयते ॥
रसवत् । रतेरङ्गत्वाद्रसवदलंकारः ॥

सौधेष्विन्दूदये शुद्धाः प्रियमार्गस्पृशो दृशः ।
न व्याकुलयितुं मृज्जा यत्रोत्पलदृशमलम् ॥

चन्द्रोदये प्रियमार्गवीचिणीरुत्पलदृशां दृष्टीर्व्याकुलीकर्तुं
15 भ्रमरा नालं शक्ताः । अत्युत्कण्ठयेति भावः ॥ प्रेयोलंकारः ।
प्रियमार्गवीचणशुद्धत्वादौत्सुक्यस्य रत्यङ्गस्य व्यङ्ग्यत्वात् । व्यभि-
चारि प्रेयस्त्रि ॥

प्रलापः शिवभक्तानां श्रूयते यत्र निश्चलैः ।
शिवभक्तैर्गृहद्वारं कुर्वद्भि - - - - - ॥

प्रलापहर्षबाष्पेण गृहद्वारं पङ्क्तिं - - - - -

- - - - - ॥*

भवतौभिश्चन्द्रोदयेपि कोपो न त्याज्यः । चन्द्रादधिकस्य
5 गृङ्गारोदौपकस्याभावार्थाऽपिशब्दः । इत्येवं प्रियहासोऽल्पः
स्त्रीणां कोपे निश्चयमल्पीकरोति । प्रियहासेन रोषः शाम्य-
तौत्यर्थः ॥ समाहितम् । कोपप्रशान्तेरभ्यङ्गत्वमिति ॥

हठेन पादपतनं यत्र रामासु सागसाम् ।

कोपाग्निं दौपयति च प्रसादाम्बु च वर्षति ॥

10 रामासु सापराधानां सबन्धि हठेन प्रणमनं कर्तुं कोपाग्निं
ज्वलयति हर्षं जलं च वर्षति । प्रसादे इति वा पाठः ॥
भावसंधिः । असूयौत्सुक्ययोः रत्यङ्गयोर्भावात् ॥

लटभाभिः स्वयं दत्तं विलासिषु नखक्षतम् ।

दृष्टं विस्मृत्य रत्यन्ते यचैति क्षणविघ्नताम् ॥

15 कामिनां तरुणीभिः स्वयमेव दत्तं तदेव विस्मृतं मद्रत्यन्ते
दृष्टं विघ्नतामेति ॥ भावोदयः । असूयोदयात् ॥

यस्मिन्पराङ्मुखौ रक्ता सासुः स्मेरा च योषिताम् ।

सुसखीसाक्षिकं दृष्टिर्भवत्यानमति प्रिये ॥

रमणीनां प्रिये प्रणमति सति दृष्टिः पराङ्मुखादिसहिता
स्निग्धसखीसाक्षिकं भवति ॥ भावशबलता । अमर्षासूया-
निर्वेदद्वेषाणां शबलत्वात् ॥

भ्रूभङ्गभङ्गिभिः स्त्रीणां येनात्ताश्चापराजयः ।

5 कामस्य कामिभिर्यत्र कृतस्तस्य पराजयः ॥

येन कामेन भ्रूभङ्गविच्छित्तिभिर्हेतुभिश्चापानां राजयः
पङ्क्तयः प्राप्ताः । तस्य कामस्य कामिभिः पराजयः कृतः ॥
अनुप्रासयमकयोः संसृष्टिः ॥

केलीकोकिलकाकल्याः कल्याः कान्तागिरो जये ।

10 यत्र कामयमानानां नानाङ्गं सुवते सुखम् ॥

यत्र प्रियाणां वाचः कामयमानानां कामिनां नानाविधं
सुखमुत्पादयन्ति । केलीकोकिलानां काकली क - - - - -
जये कल्याः कुशलाः ॥ तयोरेव संकरः ॥

कर्पूरविपणो यत्र सर्वस्मि - - - - -

15 - - - - - ॥*

- - - - - स्थानेनाम-
रावतीन्दुनगरी भूरि सौभाग्यं स्पृशति । समगुणेति
तात्पर्यम् । या च स्त्री पुरुषायितवृत्तिः सात्यर्थं सुभगा ॥

समामोक्त्येचासंकरः । स्पृशतीति संभावनतात्पर्यादार्युत्प्रेचा ।
नायिकाव्यवहारारोपाच्च समामोक्तिः ।

एवंविधामजयमेरुगिरेः प्रतिष्ठां

कृत्वा सकौतुक इवाजयराजदेवः ।

५ दोर्वीर्यसंहतनयं तनयं विधाय

सिंहासने त्रिदिवमौक्षितुमुच्चचाल ॥

एवंविधामजयमेरुनगरस्य प्रतिष्ठां कृत्वा स्वर्गदर्शनार्थं
कौतुकीव । नगरान्तरलाभार्थमिति भावः । भुजबलमि-
(मौ)लितनौति पुत्रं सिंहासने कृत्वा चलितः ॥

10 अर्णोराजोऽथ सादाशिवमनिशमनुध्याय रूपं प्रसन्ना-
दस्मादचैव जन्मन्यतुलबलमिव प्राप्तपञ्चाननत्वम् ।
सर्वोर्वीपुण्डरीकप्रकटविघटनोन्मत्तमातङ्गराज-
चासायासावतारव्यवसितमकरोत् पुष्करक्षेत्रमेकम् ॥

अथार्णोराजः सदाशिवसंबन्धि रूपं ध्यात्वा प्रसन्नादस्मात्
15 सदाशिवादस्मिन्नेव जन्मनि बलबलमिव पञ्चाननत्वं सितत्वं
पञ्चवक्त्रत्वं च प्रायैकमप्रतिमत्त्वं पुष्करक्षेत्रं समस्तभूमौ पुण्डरी-
काणां कृत्राणां प्रकटं विघटनेनोद्धृतानां मातङ्गराजानां
स्नेच्छानां चासायायाधोत्पादने व्यवसितं शक्तमकरोत् । व्यवहित-
मिति पाठो नार्घः । सिंहश्च पुण्डरीकाणां व्याघ्रविशेषाणां
20 विघटनादधिकमुद्धृतानां हस्तिनां भयमुत्पादयतीति भद्रम् ॥

श्रीलोलराजसुतपण्डितभट्टनो-
 राजात्मजो विवरणेन स जोनराजः ।

सर्गं चिराद्ब्यधित पञ्चममञ्चि - -

- - - - - भिधकाव्यराजे ॥ १ ॥

5

श्रीश्रीकण्ठचरित्रकाव्यविवृतौ - - - - -

- - - - - ।

- - - - -

- - - - - ॥ २ ॥

इति पृथ्वीराजविजये पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ॥

- - - - -

- - - - - ।

- - - - - समीयु-

र्भयं तद्देवाजयमेरुनार्यः ॥

- 5 प्रथमं चन्द्रस्य राज्ञा गृहे ग्रासे सति चन्द्रलोके दाक्षाय-
णैनां ताराणामश्विन्यादीनां यज्ञयमासीत् तदेव तत्सम-
मित्यर्थः । दुर्गाङ्गनाः प्रापुः । विषखे हस्तः श्रवणं च नक्ष-
त्रम् । हस्तः करः श्रवणं कर्णौ यासां ताः ॥

रजोभिरेव प्रतिभानभङ्गे

- 10 पूर्वस्य पुंसस्तरणोः प्रवृत्ते ।

निर्गत्य सोष्मा विदधे स दौष्मा-

नौर्वामितां तत्कटकार्णवस्य ॥

- अर्णोराजस्य पूर्वः पुमानादित्यः । तस्य रजोभिरेव
प्रकाशनाग्ने जाते सोष्मा दृप्तो दौष्मान् भुजशाली स अर्णो-
15 राजोऽजयमेरुतो निर्गत्य तुरुष्कनैन्यसमुद्रस्य वडवाग्नि-
तामकरोत् । तत्कटकमशोषयदित्यर्थः ॥

पराङ्मुखी यत् पृतना प्रपेदे
 जनङ्गमानामसुभिर्वियोगम् ।
 स रौरवाणां सुवसत्वकालो
 भाग्यानि वा भास्करमण्डलस्य ॥

5 जनङ्गमानां स्नेच्छानां पृतना सेना प्राणैर्वियोगं पलायमाना
 सती यत् प्राप्ता स रौरवाणां नरकविशेषाणां सुवसत्वकालः
 सूर्यमण्डलस्य वा भाग्यानि भवन्ति । यदि हि स्नेच्छा रणे
 संमुखा घ्नियेरंस्तदार्कबिम्बं भित्ता गच्छेयुः । न त्वेवमतो
 नरके पतिताः ॥

10 दौःशालिनामाजयमेरवाणां
 यस्त्रोहघातैः करणीयमासीत् ।
 भारायमाणैर्निजवर्मलोहै-
 स्तदन्वभूवन् बहवस्तुरुष्काः ॥

अजयमेरुभवानां भटानां शस्त्राघातैर्यत्कर्तव्यमासीत्तद्भारी-
 15 भूतेरायसकवचैर्बहवस्तुरुष्काः प्रापुः । निजकवचभारैरेव मृताः
 इत्यर्थः ॥

पुरो गतानामसवो निरौयुः
 पिपासया ये मरुधूलिमध्ये ।

तैरव सा - - - - -

- - - - - ।

- - - - -

- - - - - ।

5 - - - - - घतस्कराढ्यं

सुखेन पाथेयमिवात्तवद्भिः ॥

अश्वघोवास्त्रायुधप्रहारं दत्वा शोणितं वमद्भिः कैश्चिन्मृतम् ।
भावे क्तः । अत्रोत्प्रेक्ष्यते । पापचौरसंकुले नरकमार्गे पाथेयमिव
गृह्णद्भिः । चौरबहुले च लोकः पाथेयं गृह्णाति ॥

10

मरुस्थलीवालुकयाप्यधत्त

कांश्चिद्विपन्नांलुठतः पृथिव्याम् ।

संस्कारमात्मोचितमन्तकाले

प्रवर्त्तयन्ती कृपयेव वात्या ॥

मृतान् भूमौ लुठतोऽन्यान् वातसमूहो मरुषिकतयाच्छा-
15 दयत् । अत्रोत्प्रेक्ष्यते कृपया हेतुभूतया यवनोचितं
प्रेतसंस्कारं भूमिनिखननलक्षणं प्रवृत्तयन्तीव ॥

रुद्धा स्थितान् कांश्चन राजमार्गं

ग्राम्याः श्वान् गन्धभयेन हुत्वा ।

तुरुष्कमांसस्य चिराद्रसज्ञं

क्रव्यादमग्निं रचयांबभूवः ॥

राजमार्गमावृत्य स्थितान् कांश्चन शवान् गन्धभयेन ह्रुत्वा
ग्रामिणः क्रव्यादमसंस्कृतमग्निं तुरुष्कमांसस्यास्वादज्ञं चिराच्चक्रुः ॥

5

बभूव यावानवनेः पुरस्ताद्

भारस्तुरुष्कैर्यसुभिर्लुठङ्गिः ।

तावानभून्मेदुरितोदरीणां

तत्पारणाद्वारणतः शिवानाम् ॥

तुरुष्कैर्गतप्राणैर्लुठङ्गिः पूर्वं भूमेर्यावान् भारोऽभूत् तावानेव
10 भारस्तत्पारणान्तुरुष्कघसनात् पौवरोदरीणां जम्बुकीनां धार-
णतोऽभूत् । पारणशब्दो भक्षणे वर्तते । तुरुष्कभक्षणे निवृ-
त्तस्य भारस्य शिवामेदुरत्वात्पुनरुदयः ॥

असूचि तेषां विशतामुलूकैः

सपादलक्षं यदमङ्गलं प्राक् ।

15

तत्तत्पलास्वादननिवृ(र्त)तस्य

भद्रं बभाषे बलिभुक्कुलस्य ॥

सपादलक्षं नाम देशविशेषं विशतां स्नेच्छानाममङ्गल-
मुलूकैः कौशिकैर्यत्सूचितं तदमङ्गलमेव कर्तुं काक(कुलस्य)
शूभमसूचयत् । यतो मृतस्नेच्छमांसप्राप्तसुखितस्य । आसाद-

20 नेति पाठो नार्धः - - - - - ॥ .

- - - - - रीति-
 परस्परस्याप्सरसो हसन्त्यः ।
 जनङ्गमैर्मूर्धभिरर्ध - - -
 - - - - - ॥

5 — — — — — तिस्ते यत्र कथा-
 मात्रमपि नाकुर्वन्निति । पान्थेष्विति यस्य च भावेन भाव-
 लक्षणमिति सप्तमौ । पान्थाः कथामत्यजन् गृद्धादयस्त्वकुर्व-
 न्निति तात्पर्यम् ॥

पवित्रिता वीररसेन धात्री
 10 मुहूर्तमात्रं नृपसैनिकानाम् ।
 चाण्डालकीलालमलौमसे तु
 चिरस्य बीभत्सरसे ममज्ज ॥

राजसैन्यानां वीररसेन कर्त्ता भूमिमुहूर्तमात्रं पवित्रीकृता ।
 तुः पक्षान्तरे । स्नेच्छरक्तैरशुचौ बीभत्सरसे चिरममज्जत् ॥

15 हतप्रसादीकृतनष्टशिष्ट-
 प्रविष्टतौरुष्कतुरंगमापि ।
 सेना चकाराजयराजसूनो-
 रुच्चैःश्रवस्सर्गमयौरिवाशाः ॥

राजःसेना दिग्गः सर्वा उच्चैःश्रवस्सुर्गप्रकृतिरिव व्यधात् ।
 हताः प्रसादीकृता नष्टाश्च तेभ्यः शिष्टाः प्रविष्टास्तौरुष्कास्तु-
 रंगमा यस्यां सा । तुरुष्कवाहापहरणात्तत्सेना दिग्गोऽजैषीदिति
 भावः । उच्चैःश्रवा एक एव स च स्वर्ग एवास्ति । तत्सेना तु
 5 वराश्वबाहुल्याद्भङ्गसंख्योच्चैःश्रवःसहिता दिग्गोऽपि व्यधादित्यपि-
 शब्दस्यार्थः । यदा हतादिभ्यः शिष्टत्वादल्पप्रविष्टाश्चापि
 दिग्गोऽनेकोच्चैःश्रवःसहिता अ — — — — ॥

भौत्या विना कस्य न सुप्रवेश-

मुपक्रमे यत्समरस्य जज्ञे ।

10 भाग्यैर्विना कस्य न च प्रवेष्टुं
 साध्यं न तत्पार्थिवसैन्यमासीत् ॥

रणारम्भे यद्राजसैन्यं भौत्या विना कस्य न सुप्रवेशमभूत् ।
 भीतिरेव यत्र सैन्ये न प्रविष्टा । अन्ये तु सर्वे तुरुष्काः
 प्रविष्टा इत्यर्थः । तद्राजसैन्यं कस्यापि प्रवेष्टुं साध्यं नासीत् ।
 15 कैर्विना । भाग्यैर्विना । भाग्यान्नेव समरान्ते प्राविशन्नन्ये तु
 तुरुष्का हता इत्यर्थः । हत्वा तुरुष्कांस्तद्भङ्गं प्राप्तमित्यर्थः ।
 यदा निर्भयस्य कस्य न सुप्रवेशमिति यज्जनैर्जज्ञे ज्ञातं
 तद्राजसैन्यं भाग्यानि विना कस्यापि न प्रवेष्टुं शक्यमिति ॥

एकैकमु - - - - -

संप्रेषितै - - - - -

- - - - - ॥*

- - - - - तथा परकटकं सिद्धवत्प्रविष्टा इत्यर्थः ।

८ पौरस्त्यमृतपूर्णकर्णास्मादिनोऽशोभन्त ॥

नृपः पताकासिचयप्रपञ्च-

संचारिचिचाम्बरभूषणायाम् ।

अलौठयित्वैव नवीकृतायां

पुण्यामपूर्वीं श्रियमौक्षते स्म ॥

10 ध्वजवस्त्राण्येव संचारि चित्रं यस्य तदम्बरं भूषणं यस्यां
तत्रालौठयित्वैव लोठनेन विनैव नवीकृतायां नगर्यां स शोभां
दृष्टवान् । शत्रुमारणान्नगर्यां नवीकरणम् ॥

महोत्सवः क्षमापतिना सुलभे

न ज्ञायते कुच स सूचितोभूत् ।

15 अद्यापि यो रुद्धतुरुष्कयात्रां

तथैव सर्वामवनौमुपास्ते ॥

योऽद्यापि स्नेच्छानां यात्रां रुद्धवान् सर्वां भुवं च व्याप्नोति
स महोत्सवो राजा कस्मिन्नपि शोभने स्थिरे लग्ने प्रारब्धो-
भूत् । शोभनलग्ने एवारब्धस्य स्त्रैर्योपपत्तेः ॥

* A lacuna of about a verse or two with Com

व्यापादि यस्मिन्नपवित्रसेना
 स भूप्रदेशश्चिरकालमासीत् ।
 कङ्कालिकाकालिशृगालमाला-
 मेलापकोलाहलकेलिरौद्रः ॥

5 सा चाण्डालसेना यत्र मारिता तत्स्थानं कङ्कादिरौद्रं
 जातम् ॥

विशुद्धिहेतोरथ तस्य राजा
 घ्राणेन्द्रियाकस्मिकरौरवस्य ॥
 अकारयत्कीर्तिपटीपिनङ्ग-
 10 क्षीरोदनग्रंकरणं तटाकम् ॥

नासाया आकस्मिकरौरवाख्यस्य नरकविशेषस्य । उद्वेगो-
 त्पादकदौर्गन्ध्यातिशयादिति भावः । तस्य स्नेच्छमारणस्थानस्य
 शोधनार्थं स राजा तटाकमकारयत् । कीर्तिरेव पटी तथा
 पिनङ्गस्य वलितस्य क्षीरोदस्य नग्रंकरणम् । क्षीरसमुद्रादधि
 15 कमित्यर्थः । अधिकश्च हीनं जयन् पटीं हत्वा नग्रं करोति ।
 नग्नपलितेत्यादिना - - - - - टि नग्रंकरणशब्दस्य रूपम् ॥

तत्तुङ्गमातङ्गघटास्थिकूटा-

वि - - - - - ।

- - - - -

20

- - - - - पीडां मनुते स भू- ॥*

या पुष्करारण्यविहारशीला
मन्दाकिनीवेन्दुनदी प्रसिद्धा ।
भगीरथः सिन्धुमिव स्रवन्त्या
तथा तटाकं तमपूरि देवः ॥

पुष्करमरण्यमाकाशं च तत्र संचारिणी या चन्द्रनदी गंगेव
प्रसिद्धा तथा नद्या स राजा तं तटाकमपूरयत् । पूरेर्णि-
जन्तस्य लुङ्यपूरीति रूपम् । भगीरथः समुद्रमिव ॥

पयोभिरीशानकिरीटचन्द्र-
पेयूषगर्भैः परिपूरितोपि ।
10 क्षारत्वमापत्सगरात्मजाना-
मपुण्यलेशादिव वारिराशिः ॥

हरमौलिचन्द्रसुधामिश्रैर्जलेः पूरितोपि समुद्रः सगरपुत्रा-
णामभाग्यवशादिव क्षारत्वं प्रापत् । दोषादिवेत्यर्षः पाठः ॥

पुण्यास्तु तस्याजयराजसूनोः
15 को वेदितुं तत्त्वगतौरभिज्ञः ।
शाकंभरौक्षेचगतोपि यस्य
क्रीडासमुद्रः सचिवः सुधायाः ॥

राज्ञः पुण्यानां परमार्थं ज्ञातुं को विदग्धः । यस्य क्रीडाभिः
क्षारस्थलस्योपि सुधायाः सदृशः ॥

नाम्ना पितुर्वारुणबाणलिङ्ग-

प्रासादमुत्तुङ्गगमकारयद्यत् ।

वारां विवृद्ध्यर्थमिवागतोसौ

हिमालयस्तत्सरसो विभाति ॥

- 5 पितुरजयराजस्य नाम्ना स वारुणबाणलिङ्गमहितं प्रासादं
यदकारयत्तदसौ प्रामादकरणविधिः सरसो जलानां वर्द्धनार्थ-
मिवागतो हिमालयो विभाति ॥

तद्बाणपूजागतपाशिहस्त-

स्रस्तैरिवानन्दितघूर्णितत्वात् ।

- 10 नागैर्नगर्यामपि संनिधानं

व्यधायि तेन हृदनिर्भरा भूः ॥

हर्षघूर्णनाद्धेतोस्तद्बा - - - - -

- - - - - ॥

- - - - - सोक्तेन किं

- 15 भवति । इदमेव सारमिति भावः । यानि देवगृहाणि पूर्वं
जातानि यैश्चाग्रे भविष्यते तेषां स एव । न पुनर्देवगृह-
निर्मातारः । प्रतिष्ठाफलं प्रापत् । कुतः । तुरुष्काणां यात्रायाः
विघातात् । यदि हि स राजा तुरुष्कान्न विहन्यात्ते तुरुष्का
देवगृहध्वंसं कुर्युरिति भावः ॥

श्रवौचिभागो मरुभूमिनामा

खण्डो द्युलोकस्य च गूर्जराख्यः ।

परौक्षणायेव दिशि प्रतीच्या-

मेकीकृतौ पाशधरेण यौ द्वौ ॥

5

तयोर्दयोरप्युदिते नरेन्द्रं

तं वव्रतुस्तुल्यगुणे महिष्यौ ।

रसातलस्वर्गभवे इव द्वे

चिलोचनं चन्द्रकलाचिसर्गे ॥ युगुलम् ॥

मरुसंज्ञितोऽवौचिनामनरकैकदेशस्तथा गूर्जरनामा स्वर्गखण्ड
10 इति द्वौ खण्डौ पश्चिमदिशि वरुणेन परौक्षार्थमिव स्थापितौ
यौ तयोर्दयोर्मरुगूर्जरयोरुत्पन्ने समगुणे राज्ञ्यौ वव्रतुः । यथा
भूतलस्वर्गात्पन्ने चन्द्रकलागंगे परमेश्वरं वव्रतुः ॥

पूर्वा तयोर्नाम कृतार्थयन्तौ

तं प्राप्य कान्तं सुधवाभिधाना ।

15

सुतानवापत् प्रकृतेः समानान्

गुणानिवान्योन्यविभेदिनस्त्रीन् ॥

तयोर्महिष्योर्मध्यात् पूर्वा ज्यायसी सुधवा नामा तं कान्तं
लब्ध्वा नाम सार्थकं कुर्वती त्रौन् पुत्रान् समवलानन्योन्यभिन्नान्
गुणभिन्नांश्च प्रापत् । अतः संभाव्यते । प्रकृतेर्गुणान् सत्वरजस्त-
20 मांसीवेति । तानि च समान्योन्यभिन्नानि च भवन्ति ॥

एको दशग्रीव इवाचकाङ्क्ष
 पितुर्विरुद्धं व्यवहृत्य नाशम् ।
 अन्येन बाल्येपि न कुम्भकर्ण-
 न्यायेन नामाप्यत - - - - - ॥

5

(आसीत्तृतीयस्तु) मधुद्विषोऽश-
 स्सत्त्वोन्नतो विग्रहराजनामा ।
 महाबला - - - - -

- - - - - ॥ युगुलम् ॥*

10 गूर्जरेन्द्रो जयसिंहस्तस्मै यां दत्तवान् सा काञ्चनदेवौ
 रात्रौ च दिने च सोमं सोमेश्वरसंज्ञमजनयत् ॥

उत्पत्स्यते कंचन कार्यशेषं
 निर्मातुकामस्तनयोस्य रामः ।
 सांवत्सरैरित्युदितानुभावं
 15 मातामहस्तं स्वपुरं निनाय ॥

कंचित्कार्यशेषं संपरदयितुमस्य पुत्रो राम उत्पत्स्यते इति
 ज्योतिर्विद्भिः कथितमाहात्म्यं तं सोमेश्वरं मातामहो निजनगर-
 मनयत् ॥

सर्वप्रकारं खलु संमुखोपि
तस्यानुरूपं तनयं विधाता ।
विधातुमल्पप्रतिभो यदासौ-
त्ततो न तं सान्वयतां निनाय ॥

- 5 सर्वथाऽनुकूलोपि विधिस्तस्य सदृशं पुत्रं कर्तुमनभिज्ञो
ध्रुवं यदासौत्ततो राजानं सपुत्रतां नानयत् ॥

चतुर्मुखत्वे सदृशे विरिञ्चा-
द्विष्णोरलूनाननता विशेषः ।

देवस्तु पञ्चाननताविशिष्टः

- 10 षडाननत्वं गुह्यमानिनाय ॥

प्रकृष्टतामभ्यधिकामतोपि

स्रष्टुं पटुर्न ध्रुवमौश्वरोपि ।

अतः कुमारं विदधे कुमार-

मैच्छन्न तन्यूनसमान्ववायम् ॥ युगलम् ॥

- 15 विरिञ्चाद्ब्रह्मणः सकाशाद्विष्णोरलूनमुखता कर्त्तौ विशेषो
भवति । चतुर्मुखत्वे समेपि सति । तथा चतुर्मुखस्य विष्णोः
सकाशात् पञ्चाननत्वेन महेश्वरोधिकः । स च स्वपुत्रं कुमारं
षण्मुखत्वमनयत् । अतोपि कुमारादपि प्रकर्षं कर्त्तुमौश्वरोपि
ध्रुवमसमर्थः । अतः कुमारमेव ब्रह्मचारिणं कृतवानित्यर्थः ।
20 महेश्वरः कुमारं न्यूनोऽथवा समोऽन्ववायः पुत्रो यस्य तं नैच्छत् ॥

इत्थं विविच्चन्द्रपतिः सम -

- - - - - ।
- - - - -
- - - - - ॥*

5 - - - - -

- - - कर्मसु धूर्जटिमौश्वरम् ॥

भविष्यतानेन विमानदातु-

र्हातुं धनेशान्नरयानलज्जाम् ।

रामस्य पित्रा दुहितुः सुतेन

10 सुतेजसा नन्दतु चक्रवर्ती ॥

धनेशाद्वैश्रवणान्नरयानेन नरस्कन्धादिरोहणेन लज्जां हातुं
त्याजयितुमिव विमानदातुः पुष्पकाख्यविमानप्रतिदायिनो
रामस्य पित्रा भविष्यतानेन दौहित्रेण चक्रवर्ती तुष्यतु ।
जहातिरन्तर्भावितण्यर्थः ॥

15 श्रुत्वेति दौहित्रमुखारविन्द-

लावण्यलक्ष्मीसहवासमत्ताम् ।

विधाय दृष्टिभ्रमरीं कथंचित्

तत्संमुखीं भूपतिरावभाषे ॥

दौहित्रमुखपद्मलावण्यसमृद्धिसहवासेन मत्तां दृष्टिभ्रमरौ
तस्य दैवज्ञस्य संमुखौ कृत्वा राजावदत् ॥

‘अश्रौषमेवं बहुधा बहुभ्यः

संदेहगेहं च मनो ममाभूत् ।

5

तदस्ति किञ्चिन्न हि जीवलोके

प्रियंवदानां न यदौरणीयम् ॥

वज्रभ्यः सकाशाद्वज्रधा चाहमेवं श्रुतवान् । मम मनस्तु
संदेहस्थानमेवाभूत् । चाटुकाराणां न किञ्चिद्वाच्यं यतः ॥

पाङ्गुण्यमन्त्रौ परमार्थतस्तु

10

प्रजापतेस्त्वं प्रतिभाससे मे ।

ललाटपट्टेषु कृतो नराणां

त्वं तेन लिप्यक्षरसूत्रधारः ॥

विधातुः षाड्गुण्ये सृष्टिविषये व्यवहारे मन्त्रौ उपदेष्टा त्वं
भवसि । त्वमेव प्रजापतेः सुखदुःखलेखनोपदेशं करोषीत्यर्थः ।

15

यदा प्रजापतिना त्वं लिपिलेखकरः कृतः । त्वमेव लिखसीत्यर्थः ॥

आज्ञां त्वदीयामथवा - - -

शरौरभाजां प्रसवप्रसङ्गे ।

ज्योतींषि तीक्ष्णांशुमुखान्यमूनि

- - - - - ॥

- - - - - णिनां जन्मकाले त्वदाज्ञा-
नुसारं सूर्यादिय - - - - - ॥*

- - - - -

- - - - - ।

5

- - - - -

- - - - - भरणान्तराणि ॥

संशय वंशस्तद्भेदं कृत्वा मुक्तारक्षसमुक्तं वनं सूच्यतामुच्य-
तामतः । यथा सदेहो न भवति तथा कथयेत्यर्थः । यद्वा
व्यादाय(?)स्त्रपित्यादिष्विदं द्रष्टव्यम् । मम मे हृदये स्थितेन
10 येन भूषणान्तराणि त्याज्यत्वं प्राप्नुयुः । तद्वचनमेव भूषणभृतं
हृदि धारयामीत्यर्थः ॥

संदेहबीजमाह—

इदं हि तद्योमनि चित्रकर्म

मरुत्स्थले श्रीसहजस्तरुर्वा ।

15

सूर्योदयो वा भूजगेन्द्रलोके

कलौ युगे यद्गुवि कैटभारिः ॥

हिर्यस्मार्दर्थः । कलिकालेपि विष्णुर्भूमौ यदवतरति
तदिदमाकाशे चित्रं भवति । मरौ पारिजातो भवति ।
सूर्योदयो वा पाताले भवति । अतो मम संदेह इत्यर्थः ॥

कस्याश्च पुण्यानि तथाविधानि
 प्रादुर्भवेयुश्चरमे युगेस्मिन् ।
 यस्याः करिष्यत्युदरं पवित्रं
 गंगाभुजंगादपि शार्ङ्गपाणिः ॥

5 इदमपि संशयबीजम् । हरिर्यस्या उदरं समुद्रादपि
 पवित्रं करिष्यति तस्याः कस्याः कलावपि पुण्यानि तथाविधानि
 भवन्ति । यैः संस्करिष्यत्युदरमित्यार्षः पाठः ॥

आरुह्य संकल्पविकल्पतल्पं
 जल्पन्तमित्थं जयसिंहदेवम् ।
 10 स्मित्वा विधातेव स मन्युमूर्ति-
 मौहूर्तिकः स्फूर्त्तिमदित्युवाच ॥

संकल्पाश्च विकल्पाश्च तदेव तल्पमाश्रित्य पृच्छन्त जय-
 सिंहदेवं मौहूर्तिको ज्योतिर्विन् मन्युमूर्तिः प्रजापतिरिव
 किञ्चिद्विहस्योर्जितमेवमवोचत् ।

15 दशावतारानुकृतिप्रगल्भैः
 पुरा मुरारेर्दशभिः शिरोभिः ।
 दिङ्मात्र - - - - -
 - - - - - ॥*

- - - - -

- - - - - तस्थे ।

तामुज्जहार त्वरितं स दृष्टिं

सर्वसहं कोसलराजपुत्र्याः ॥

- शोकाग्निना पीतेपि वृद्धिं गच्छति बाष्पसमुद्रे - - त्वा
यासीत् तां कौसल्याया दृष्टिं सर्वसहं शोकसहं स उद्धृतवान् ।
सर्वसहं भूमिं च हरिरुद्धृतवान् ॥

जीमूतकेशत्वदशोपपन्न-

सौदामनीसोदरपिङ्गलिम्बा ।

- ममार्ज बाष्पाम्बुनिपातपाण्डू
पादौ जटानां पटलेन चास्याः ॥

जीमूतकेशत्वदशोपपन्नः सौदामनीसोदरः पिङ्गलिम्बा
यस्य तेन । विद्युत्कपिशेनेत्यर्थः । बाष्पजलपाण्डू मातुः पादौ
रामो जटापटलेन शोधितवान् । प्रणामं कृतवानित्यर्थः ॥

- रामप्रणामानुपदं विमुक्तं
प्रणम्य सुग्रीवविभीषणाभ्याम् ।
तत्पादमेकं पवमानसूनु-
रन्यं सुमित्रातनयो ववन्दे ॥

- रामस्य प्रणामानन्तरं सुग्रीवविभीषणाभ्यां प्रणम्य मुक्तमेकं
कौसल्यायाः पादं हनुमान् अन्यं लक्षणो वन्दितवान् ।

त्वं मे महर्षे बहुमानभूमि-
 रत्नं प्रणम्येति ससंभ्रमायाम् ।
 पादौ जनन्यामुपसारयन्त्यां
 जटाधरो लक्ष्मण इत्युवाच ॥

5 तपोधन मम त्वं बहुमानपात्रं भवस्यतः प्रणम्यालम् । मा
 प्रणमं कृथा इति संभ्रममहितायां मातरि पादौ संवृण्वत्यां
 मत्यां लक्षण एवमवोचत् ॥

आर्यस्य कान्तारविहारकेला-
 वहं सपादानु - - - - ।
 10 समन्वयातः क्षणमेव दृष्ट्या
 विधीयतां मातरनुग्रहो मे ॥

आर्य - - - - -
 - - - - - मनया दृष्ट्या हे मातः - - - -
 - - - - - ॥

15 [कौसल्य]यालक्ष्यत लक्ष्मणस्य
 पौलस्त्यशक्तिप्र - - - - ।
 ज्येष्ठानुरागाख्यनिधानकोशे
 मुद्रानिवेशो निहितो हृदीव ॥

ततः कौसल्यया हृदि सूक्ष्मं मेघनादपातितशक्तिव्रणचिह्नं
लक्ष्मणस्य लक्षितम् । अतः संभाव्यते श्रीरामविषये स्नेहनाम-
निधिकोशे न्यस्तो मुद्रानिकेश इव ॥

किमेतदित्याकुलया स्पृशन्त्या

5 पृष्ठोपि मात्रा न स किञ्चिदूचे ।

द्रोणाचलेन्द्रोद्धरणोद्धरोपि

नेमे च लज्जातिभरात्कपौन्द्रः ॥

व्रणं स्पृशन्त्या व्याकुलया मात्रा किमेतदिति पृष्ठोपि
लक्ष्मणो न किञ्चिदुक्तवान् । व्रणरप(णारोप?)णौषधानयनार्थं
10 द्रोणाख्यपर्वतोद्धरणेनोद्धरोपि हनुमान्लज्जाभरादनमत् । मयि
सत्यनेनायोधीति लज्जाभरः ॥

यथाऽभवत्तस्य च शक्तिपातो

धान्वन्तरिर्वायुसुतो यथा च ।

वितत्य रामेण तथा समस्तं

15 मातुः पुरस्तात्प्रतिपाद्यते स्म ॥

लक्ष्मणस्य शक्तिपातो यथाभूद्यथा च हनुमान् विशल्यीकरणे
धान्व(न्त)रिरासीत्तथा 'स प्रकारः समस्तं विस्तरेण मातुरग्रे
रामेण प्रतिपादितम् ॥

स्तुतिर्जगत्प्राणसुतस्य केयं

20 जागर्ति यत्प्राणयितं जगन्ति ।

हरिस्तथा भाति न कौस्तुभेन

यथामुना लक्ष्मण लक्ष्मणा त्वम् ॥

जगन्ति प्राणयतीति जगत्प्राणो वायुस्तस्य सुतो हनुमांस्तस्येयं
का स्तुतिः । यज्जगज्जीवयितुं हनुमाञ् जागर्ति । एतेन न
5 केवलं हनुमता लक्ष्मणः प्राणितो यावज्जगन्त्यपि लक्ष्मणवत्प्रा-
णयतीति प्रतिपादितम् । कार्याणां - - - - - लक्ष्मणे
प्राणिते रामस्य - - - - - जीवने य - - - - -
- - - - - ॥*

- - - - - मित्येवाहं त्वयोदरस्थेन, यतः पवित्रजन्म- -
10 - - - - - ॥

कौसल्यया भाषितमित्यवेत्य

देवोपि - - - - - ।

- - - - - मनुजस्य सेवा-

मनुस्मरन् वाक्यमिदं बभाषे ॥

15 लीलयात्तो मनुष्यभावो येन स देवो रामः कौसल्ययोक्तमेवं
श्रुत्वान्येन कर्तुमशक्यां लक्ष्मणस्य सेवां स्मरन्निदमवोचत् ॥

मातर्मृषा प्रार्थयसे त्वमेवं

भवादृशीनां न हि तत्त्वमेतत् ।

देवी भवानौ किमु कार्तिकेय-
गाङ्गेययोः किञ्चिदवैति भेदम् ॥

हे मातस्त्वमेवं मृषा याचयसे त्वादृशीनामेतन्न युक्तम् ।
रामो मदीयो लक्ष्मणोन्यदीयो इति । यतो गौरौ कुमार-
5 हेरम्बयोर्भेदं न जानाति ॥

आशंसनीयं तु ममेदमस्ति
यथाग्रजं मामनुजः सिषेवे ।
तथाहमस्यानुजतामुपेत्य
सेवाविधानात् कृतनिष्क्रयः स्याम् ॥

10 मम त्वेतदाकाङ्क्षणीयं यथा मामग्रजं लक्ष्मणोनुजः सेवित-
वानेवं लक्ष्मणस्यानुजो भूत्वा सेवनात् कृतर्णमुक्तिः स्याम् ।
आशंसनीयमिति पाठोन्वर्षः ॥

एतस्य सेवां च चिरस्य कृत्वा
भावान् विदित्वा क्षणभङ्गिनोमून् ।

15 अनेन जूटस्य भरेण खिन्नः
काषायधारी भवितास्मि मुण्डः ॥ तिलकम् ।

लक्ष्मणस्य सेवां चिरं कृत्वा । तथामून् पदार्थान् क्षण-
नश्वरान्निश्चित्य जूटभरेण खिन्न इवाहं काषायधारी मुण्डः
भविता मुण्डत्वभावेनाहं स्याम् । बुद्धदर्शने हि काषायं वसनं
20 मुण्डत्वं च धर्मः ॥

श्रोतृप्रविष्टादिति भूतधात्री-

जामातृवाक्याद्विनयावनम्रः ।

उन्निद्रकौर्तिस्तबकैकचैत्रः

सौमित्रिरित्यं कथयां चकार ॥

- 5 उन्निद्राणां कौर्तिस्तबकानामेकचैत्रः कौर्तिं विकाम-
यितेत्यर्थः । श्रुताद्वरणैजामातृ रामस्य वाक्याद्वेतोर्विनयावनम्रो
लक्षण एवमवोचत् ॥

पाथः कणाः पद्म - - - -

- - - - - ।

- 10 - - - - - भयादयं मे

सह - - - - - ॥*

- - - - -

- - - - - ।

- - - - -

- 15 - - भविष्यामि सहस्रमूर्धा ॥

अन्येन भोगेन सम शोभा नास्ति अतोऽस्मीदृशं भोगिन्
मर्षत्वं भोगभाक् च प्राप्नुयाम् येन त्वत्पादपवित्रां भूमिं स्पृष्टं
सहस्रं मूर्धां शिरसां फणानां च यस्य म स्यामित्यत्यादरघोत-
नम् । शेषो भवेयमित्यर्थः ॥

* A lacuna of about a verse or two with con.

इत्थं महीनाथ कथानवद्या

पूराभवद्या पुरतो जनन्याः ।

स्नेहानुबन्धादपि दाशरथ्योः

पफाल तस्यां प्रथमस्य वाक्यम् ॥

5 हे राजन् । मातुरग्रे या कथा पूर्वमभूत्तस्यां कथायां
प्रथमस्य रामस्य वाक्यं फलितम् ॥

तथाहि रामत्वमुपेयुषः प्राग्

ज्येष्ठस्य निर्वाहितसाहचर्यः ।

कृष्णः कनिष्ठः स विवेकनिष्ठ-

10 स्तथागतत्वं प्रतिपन्न एव ॥

तथाहीत्यादि प्रथमवागुपपत्तिपरम् । हलधरभावं प्राप्तस्य
ज्येष्ठस्य भ्रातुर्लक्ष्मणावतारस्य सम्पादितसाहाय्यकः कनिष्ठः कृष्णो
रामावतारः बुद्धत्वं प्राप्तः ॥

अपत्यरत्नद्वयसंनिधान-

15 निधानभूः कौसलराजपत्नी ।

यथा भविषी विदितं तथा मे

बद्धावधानः क्षणमस्तु देवः ॥

कौसल्या द्वौ पुत्रौ यथा सूते तथा मम विदितमतो राजा
क्षणं सावधानो भवतु ॥

चक्षुस्त्रयाणां जगतामवामं
 वामं चयाणामपि कारणानाम् ।
 योयं जयत्यचिमुनेरिवाब्धे-
 रयोनिजं पुण्यमपत्यमिन्दुः ॥

5 यस्त्रयाणां जगतामवाममनुकूलं चक्षुः । तथा ब्रह्मादीनां
 कारणानां वामं चक्षुः । तथाचिमुनेः समुद्रस्य चायोनिजातमपत्यं
 चन्द्रोऽयं जयति ॥

मयाष्टधा लोकहिताय चक्रे
 कृता तनुः षोडशधा त्वयैव ।
 10 इतीव यो मूर्धनि धारणीयः
 परिश्रमज्ञेन महेश्वरेण ॥

मया लोकानां हितार्थं प्रकृतिरष्टधा कृता । अनेन चन्द्रेण
 पुन - - - - - ॥*

- - - पाणौ विभर्ति । हृदये मृतकलशान्तविभर्ति ।
 15 दृग्गोचरे वामनेत्रे विभर्ति । चन्द्रं कर्पूरमिव । मृत्युंजयस्य
 कर्पूरोद्भूलितस्यागमेष्वभिधानात् । अन्या लोकोत्तरा प्रादेशिकी
 प्रदेशे एकदेशे भवा भूषास्य चन्द्रस्य भूषणत्वं भवति । किं वद्-
 न्नवत् । शोभामात्रं समानो धर्मः । चन्द्रमिवेति वान्वयः ॥

लोकार्थमष्टावपि मूर्त्तयोमू-
 20 रतिप्रकृष्टा तु य एष मूर्त्तिः ।

* A lacuna of about a verse or two with com

कामं च कालं च हि सर्वकालं
सतो न गृह्णात्यविरोधमौशः ॥

हरस्याष्टौ मूर्तयो भूम्यादयो लोकहितार्था भवन्ति । एष
यश्चन्द्रो मूर्तिं भवति सा लोकहितार्थमतिप्रकृष्टा भवति । अतो
5 हेतोरीशः कामं कालं च विरोधत्यागेनानुगृह्णाति । चन्द्रस्य
कामोद्दीपकत्वात् । कालस्य तिथिमुखेन व्यवस्थितस्य चन्द्रेणैव
सम्पादितत्वात् ॥

अखण्डितेच्छैरपि राजदारैः
प्रियान्तराश्लेषमुखं न लब्धम् ।
10 इतीव धन्याः प्रति दक्षकन्याः
प्राप्नोति नित्यं नवरूपतां यः ॥

राजानो नृपा राजा चन्द्रश्च तन्प्रियाभिरैश्वर्येणाखण्डित-
च्छाभिरपि नवनवदयितालिङ्गनमुखं न लभ्यते इत्यत इव
भाग्यवतीस्ताराः प्रति यो नित्यं नवत्वं गृह्णाति । कलानां
15 चयादपचयाच्चेति भावः ॥

पक्षस्थिते दैत्यगुरौ विवादं
कृत्वा समं वाक्पतिनान्वयार्थे ।
य एव लेभे विजयप्रशस्तिं
श्रेयान् हि राज्ञः कविपक्षपातः ॥

20 चन्द्रस्य पक्षे स्थिते शुक्रे मतिः बृहस्पतिना साकं पुत्रार्थं

विवादं कृत्वा य एष चन्द्रो विजयकौर्त्तिं लब्धवान् । जो - -
 - - - बृहस्पतिचन्द्रयोर्विवादो जातः । क्षेत्रिणो ममायं बुधः
 पुत्र इ . - - - - - - - - - - ॥*

- - अतिबिम्बिता भूर्यत्ततः कलङ्कः कलङ्क इति प्रवादो
 5 जातः । कलङ्कः कलङ्क इति द्विरुक्तिर्वीष्माप्रतिपादनार्था ॥

वव्रे बलादाङ्गिरसाङ्गनापि

यदेनमेषोपि कथं कलङ्कः ।

विहाय देवौ दमघोषस्तनुं

न रुक्मिणी किं विधुमालिलिङ्ग ॥

10 आङ्गौरमो जीवस्तस्याङ्गना रोहिणी सायेनं बलाद्यद्वेऽव-
 कमत सोपि नास्य दोषः । शिशुपालं त्यक्त्वा रुक्मिणी विन्धु-
 विष्णुं किं नालिङ्गत् ॥

तुषारगौरादपि जातमस्मात्

सुचामरामाश्रवणोचितेन ।

15 इन्दौवरेणेव सुरस्रवन्तौ-

हृदान्महानीलरुचा बुधेन ॥

शच्याः श्रोतुमुचितेन । सुरूपत्वादिति भावः । बुधेन
 महानीलकान्तिना यतो हिमशुभ्रादपि जातम् । यथा शची-
 कर्णपूरत्वोचितेन नीलोत्पलेन गङ्गाप्रवाहात् ॥

अङ्गस्पृशमित्यादि बुधस्तुतिपरमान्तरकुलकम् ।

अङ्गस्पृशं यं परभागभङ्गी-
सौभाग्यहेतुं स्मरतेव बालम् । *

अद्यापि नीलोत्पलचारुनेत्रो

5 नोत्सृज्यते चन्द्रमसा कुरङ्गः ॥

बुधो नील इत्यतः परभागभङ्ग्या सौभाग्यस्य हेतुमङ्गा-
रूढं यं बालं स्मरतेव चन्द्रेण मृगोद्याप्यङ्गान्न त्यज्यते नीलो-
त्पलदृष्टिः ॥

सितेन्दुमुक्तामणिजीवहीर-

10 भौमार्करक्तोपलगम्फितो यः ।

आकाशलक्ष्म्या इव कण्ठसूत्रे

सहार्किणा नीलमणित्वमेति ॥

सितेन्दू एव मुक्तामणी जीव एव हीरो भौमार्कविव-
रक्तोपलौ पद्मरागौ तेषु गुम्फितो यो बुधः शशिना सह
15 द्युलक्ष्म्याः कण्ठसूत्रे इन्दुनीलभावमेति ॥

अल्पो महान्वा महसास्तु - -

- - - - - ।

- - - - -

- - - - - ॥*

* A lacuna of about a verse or two with com.

-----न्निकटे स्थित इत्यर्थः । पुत्राः पितुः पार्श्वे वसन्तीति
 तात्पर्यम् । अयं बुधश्चन्द्रसकाशाद्भवहितो यदास्ते तत्तस्मादहं
 मन्ये इति शेषः । जीवाद्गुरोरुपजीव्याधीत्यायं बुधो भूमिजे
 भौमे स्वकुलजातराजोद्देशेन बुद्धिं ददाति । शनिः पितुः सूर्यस्य
 5 सकाशाद्भुक्त्रमेण पार्श्वे वसतीति नैत्युल्लङ्घनप्रकाशनम् । बुधस्तु
 चन्द्रात्क्रमेणैव तिष्ठति किंतु भौमेन व्यवहितः । तथाविधा
 स्थितिः पुण्यार्थमेवास्य भवति । अयं हि गुरोर्नीतिमधीत्य
 भौमस्य प्रतिपादयति । भौमेन पुत्रेण नैतिर्भुवो वर्ण्यते ।
 सा च स्वपत्नीनां राज्ञां वर्णयत्यतो बुधस्य पुण्यम् ॥

10

रक्षःपराभूत्यभयप्रदान-

प्रौतोर्वशीनिष्क्रयढौकित्यात्मा ।

बुधप्रसूतिः पुरुहूतमित्रं

पुरुरवाः पार्थिवचक्रवर्त्ती ॥

रक्षसां पराभूतिस्तथाभयप्रदानं तेन प्रौतयोर्वशा निष्क्रयेण
 15 प्रत्युपकारेण ढौकित आत्मा यस्य स पुरुरवा बुधपुत्रो
 वज्रिसखश्चक्रवर्त्ती बभूव । राक्षसेभ्यो रक्षितयोर्वशा स्वात्मा
 यस्य प्रतिपादितः स पुरुरवा बुधपुत्र इत्यर्थः ॥

शीतोष्णभावेन मिथो विरुद्धौ

यां दौक्षितत्वेपि यदैक्षिषाताम् ।

20

संतप्ततां तद्वरुणो बभार

मित्रश्च जाड्यं प्रतिपद्यते स्म ॥

वरुणः श्रौतो रविरुष्ण इति विरोधिनावपि वरुणाकौ
 दौक्षितावपि यामुर्वशीं यदृष्टवन्तौ तत्ततो वरुणः सन्ताप-
 मवहत् । मित्रः सूर्यो जाद्यं जडत्वमवहत् ॥

सायुर्वशी प्राप्य तमुर्वशीं

तथा मनोजन्मवशंवदाभूत् ।

अस्याः शची पामरकामिनीव

यथा न सं - - - - ॥

पुरुवरसं प्राप्य सायुर्वशीं तथा कामातुराभूद्यथा पाम-
 रस्त्रीव - - - - - ॥

बहुषती - - - - -

- - - - - ।

- - - - -

- - - - - ॥*

- - - - इन्द्रममं पुत्रमिच्छतस्तस्य यैस्तपोभिर्हर्तुभिः
 कुशिकस्य गाधिनामेन्द्रः स्वयमेव जातः ॥

धर्तुं धरिचौ नवमो बभूव

नगाधिराजः स न गाधिराजः ।

ऐन्द्रौषु यस्येष्टिषु शश्वदासी-

देकाश्रयस्तर्पकतर्प्यभावः ॥

स गाधिराजो भुवं वोढुं नवमः कुलपर्वतो नामीत् ।
काकासीदेवेत्यर्थः । यद्वा स गाधिराजो नामीत्किं तर्हि नवमो
नगाधिराजः । इन्द्रयागेषु यस्य तर्पकत्वं तर्प्यत्वं चैकाग्र्य-
मासीत् । स हि शक्रस्तर्पकश्च (स एव) स एवेन्द्रयागे तर्पणीयः ॥

5

को वेद तद्गाधिभुवः सतत्त्वं
दधत्पुस्तदापि राजतत्त्वम् ।
अपारतो यत्तपसः प्रभावात्
सुवर्णतां भावनयोपनीतः ॥

तत्तस्माद्धेतोर्गाधिभुवो विश्वामित्रस्य माहात्म्यं को जानाति
10 यत्पूर्वं राजतत्त्वं चत्रियभावमपि दधत्तपसोऽपारात्प्रभावाद्धेतो-
भावनया सुवर्णतां शोभनवर्णत्वं ब्राह्मणत्वं नीतः । चत्रियोपि हि
विश्वामित्रस्तपोमाहात्म्याद्ब्राह्मणः संपन्नः । अथ च यः पदार्थः
पारदो न भवति राजतं रूपं सुवर्णं करोतीत्यपि विरोधा-
भासकः ॥

15

नित्ये हरिश्चन्द्रमधोगतिं य-
दुच्चैःपदं चागमयन्निशङ्कुम् ।
कोपप्रसादौ नृपगोचरौ तत्
त्यक्त्वापि यो राज्यमपेक्षते स्म ॥

विश्वामित्रो हरिश्चन्द्रं यदधः कृतवांस्त्रिशङ्कुं च यदुच्चैः-
20 पदं प्रापयन्तद्राज्यं त्यक्त्वापि कोपप्रसादावेवापेक्षते स्म नृपाणां
गोचरौ । राज्ञामेव कोपप्रसादावुपयोगिनौ । अयं तु राज्यं

त्यक्त्वापि निग्रहानुग्रहोद्यतोभृदित्यर्थः । उदारचेतसा तेन
तयोरेव राज्यफलत्वगणनादिति भावः ॥

स चक्रवर्त्ती भरतोपि जज्ञे

- - - - - न्दुगोच ।

5 राज्याभयं कर्तुमनेकवारं
पुलोमजा यस्य पुरो यथाचे ॥

म ह - - - - -

- - - - - ॥

- - - - -

10 - - - - - ख्यानकरं जघान ।

इतौव यद्दोर्वनदृप्तदन्तौ

रामेण रामो दमयांबभूव ॥

मम पूर्वपुरुषः सहस्ररश्मिस्तस्य समगणनकरं कार्तवीर्यमयं
हतवानित्यस्मादिव कार्तवीर्यभुजवनमत्तगजः परशुरामः श्री-
15 रामेण दमितः । मत्तश्च हस्ती दम्यते ॥

द्वाभ्यां शताभ्यां स करैररोत्सौत्

पञ्चाशता च ध्रुवमेकमेकम् ।

नैकोपि पादश्चलति स्म येन

धर्मस्य तस्मिन्परिरक्षति क्षाम् ॥

पञ्चाशदधिकशतद्वयसंख्यैः करैः सहस्रबाहुः कार्तवीर्यो
धर्मस्यैकमेकं पादं तद् ध्रुवं रुद्धवान् । यतस्तस्मिन्भुवं पालयति
धर्मस्यैकोपि पादो नाचलत् ॥

कलिर्जजागार चुरिक्रियायां

5

कृतस्य दत्ताभय एष राजा ।

तेनास्य पृथ्वीवलयप्रसिद्धिं

प्रापुर्यमूहे कलिचुर्युपाख्या ॥

कार्तवीर्यस्य कलिचुरिरिति नाम प्रसिद्धं तत्र कविरन्वर्थ-
तामूहते । चुरस्तेये इत्यस्य धातोः क्रिया चुरिक्रिया तस्यां
10 हरणेऽर्थात्कृतयुगस्य कलिरुद्यतः । कार्तवीर्यः कृतस्य दत्ताभयः ।
तेन ध्रुवं कलिचुरिसंज्ञा राज्ञो भूमण्डले प्रसिद्धिमवहत् ॥

तदीयमेवाभरणायमानं

क्रमागतं नाम समुद्वहन्तः ।

आसन् प्रवृत्ते कलिघर्मकाले

15

कालीवने केचन भूमिपालाः ॥

क्रमागतं भूषणसमं तन्नाम धारयन्तः केचिद्राजानः कलि-
ग्रीष्मे प्रवृत्ते सति कालीवनमावृण्वन् । ग्रीष्मे च वननिवासौ-
चित्यम् ॥

तेषामगात् साहसिकाभिधानः

प्रधानभावं प्रधानाध्वगानाम् ।

यस्य प्रसन्ना ददृशेऽसिस्त्रेखा

का - - - - - पार्थिवस्य ॥

5 प्रधाने युद्धे पान्थानां तेषां मुख्यत्वं साहसिकनामा राजा--
- - - - - कास्त्रीदेवीव दृष्टा ॥

सत्यं विना - - - - -

- - - - - ।

- - मनन्यगामिन्य - -

10 - - - - - ॥*

- - - माणवयाः स साहसिकस्तपस्विने वामदेवनाम्ने नि-
जराजलक्ष्मीं गुरुदक्षिणायै दत्त्वा सर्वां भूमिं जेतुं प्रस्थितवान् ॥

चूडामणेस्तस्य महीपतीनां

चूडामणिज्ञोपि न वेद तत्त्वम् । °

15 अहं हि दैवज्ञदशानुगामी

दैवाभिगामी स तु तत्प्रतापः ॥

चूडामणिर्नाम दैवज्ञशास्त्रं तत्र निपुणोप्यहमस्य राजशि-
रोमणेस्तत्त्वं न जानामि । यतोहं दैवज्ञस्तत्प्रतापस्तु दैवमप्यति-
वर्तते । यावानस्य प्रतापस्तावान् वाङ्मनसातिक्रान्त इत्यर्थः ॥

यत्कामुंकारोपणमाचयत्-

सापेक्षमाशाविजयं विजानन् ।

सभाग्यसंपत्परिवार एव

बभ्राम सामन्तशिखामणिर्गाम् ॥

5 धनुष्कर्षणमात्रमाद्यं दिग्जयं जानन्स राजा भाग्यसंपदेव
परिवारो यस्य । केवल इत्यर्थः । स चक्रवर्ती भुवं यदभ्रमत् ॥

विधास्यतः साहसमानुचर्या-

च्छायामपि च्छेत्तुमिवास्य रात्रौ ।

विरोचने चुम्बति पश्चिमायां

10 पपात जातु त्रिपुरौ पुरस्तात् ॥

रात्रौ साहसं करिष्यतोस्य च्छायामयनुचरत्वाच्छेत्तुं वार-
यितुमिव सूर्ये पश्चिमदिग्गते मत्स्ये त्रिपुरौ नाम प्राप्ता ॥

अयं पृथिव्यामपि पादचारौ

कष्टं द्विपात् सिंह इवैकवीरः ।

15 सहस्रपादस्मि दिवि प्रयामि

कथं रथेनेति रविर्ननाम ॥

द्वौ पादौ यस्य सोऽयं सिंह इवाप्रतिमस्रवीरो भुवि पादाभ्यां
चरति । रथादि त्यक्त्वा चरतीति यावत् । अहं सहस्रपादस्मि ।
अतो दिवि रथेन कथं गच्छामीत्यस्मादिव रविरदर्शनं गतः ।

क्षीणं क्षपाकान्तमशुद्धपक्षे
 दृष्ट्वा विसृष्टैरिव सागरेण ।
 प्रदीपितेजोवधदन्दश्रुकै-
 रपूर्यत द्यौर्जलदैरकस्मात् ॥

5 कृष्णपक्षे चो - - - - -
 - - - - - ॥*

- - - - - कम्पितुमारम्भमकरोत् ॥

आजन्मनः साहससादरत्वात्
 स साहसस्यैव शुभं निमित्तम् ।
 10 यथार्थनामा पिशुनं विदित्वा
 घने घनं गर्जति नन्दति स्म ॥

नित्यं साहसकरणात्सार्थकनामा स राजा तन्निमित्तं
 बाहुकम्पं साहसस्यैव सूचकं ज्ञात्वा घनं कृत्वा मेघे गर्जति मति
 साहसिको राजातुष्यत् ॥

15 ततो घनानां निचयैर्निशातै-
 निःशेषतस्तारकधान्नि शान्ते ।
 निशातनुत्वान्निशशाम नादं
 निकाममायाविनमेष वीरः ॥

निबिडैर्मघैस्तारकाणां धान्नि स्थाने तेजसि वा शान्ते
 20 मति निशावसानादत्यर्थं विस्तीर्णं शब्दमेष वीरः श्रुतवान् ॥

अथ ध्वनेः सन्मुखमस्य गत्वा
 भयानकेनेव रसेन पूर्णाम् ।
 स्मशाननामानमसौ गभीरां
 पुर्यास्त्रिपुर्याः पगिपामपश्यत् ॥

5 ततोऽस्य शब्दस्य सन्मुखं गत्वाशौ भयानकेन रसेन पूर्णामिव
 त्रिपुरीनामनगरीसंबन्धिनीं स्मशानाख्यां पगिपामपश्यत् ॥

प्राजाप्नोति कुलकम् ॥

प्राजाग्निहोत्रीकृतकालकाम-
 पुरत्रयाख्याहुतिपञ्चकस्य ।
 10 तृप्तिर्नृकौटेन मयापि का ते
 ब्रह्माण्डकोटीशतघस्मरस्य ॥

आकृष्टः पाशो यैस्तैः कालदूतैरिव खड्गहस्तैः पुरुषैः केशेषु
 गृहीत्वा महाकालायतनं प्रवेश्यमानमेवं क्रन्दन्तं स राजा
 ददर्शेति संबन्धः । अस्तकालकामत्रिपुराख्यपञ्चाङ्गतेस्तथा ब्रह्मा-
 15 ण्डकोटीशतग्राभिन्स्ते नृणां मध्ये कौटेन मया का तृप्तिः ॥

सर्वाङ्गशुद्धस्य सुधारुचेर-
 प्यालोकयामो हृदि कालिमानम् ।
 चैलोक्यकर्णी - - - -

- - - - - ॥

- - - - - नीलत्वम् । इन्दो - - - - -

- - - - - ॥

- - - - -

- - - - - ।

5 - - - शेषोपि बलैकरूपो
गोरक्षणं साहसिकः करोति ॥

तव दर्शनं यद्ययत्प्राप्तं तत्तर्हि महसा बलेन करणेन त्वयैव
योग्यणीत्वं प्रापितः स प्रकाशयताम् । योऽशेषो न शेषोपि
बलैकरूपो बलसहायो हलधर - - - मयो यः साहसिको
10 गोरक्षणं भूमिरक्षणं च करोति ॥

यः कोपि वा साहसिकोऽस्ति लोके
यस्यास्ति वा क्षत्रियतावदाता ।
कृपाकृपाणाभरणोऽस्ति यो वा
स पातु मां मृत्युभयादमुष्मात् ॥

15 यो वा साहसिको यो वा शुद्धक्षत्रियो यो वा दयाखङ्ग-
भूषणो दयामय इति यावत् । मोक्षान्मृत्युभयान्मां रक्ष - - - ॥

- - - - - कालगुरुभवद्भि-
र्मघैः स संक्रामणदौक्षयेव ।

सै।दामनीदृष्टिभिरौ - - -

- - - निर्घोषमिदं वभाषे ॥

तत्काले गुरुभवद्भिर्बहलीभवद्भिश्च मेघैः - - - - - क्ष्यमाणः ।

अत्रोत्प्रेक्ष्यन्ते । सङ्गामणं वधनिषेधे प्रेरणं तद्दीक्षयेवेति । - - - -

5 ऋवान् । - - - प्रतिपादनदीक्षाया हेतोः शिष्यं दृष्ट्वा पश्यति ॥

- - - - - प्रलापं

भाग्यैर्दृशोर्गोचरमागतं मे ।

विमुच्यतैनं द्रुतमन्यथा व-

स्तदा - - - - - दस्मिन् ॥

10 अरे वराकाः । हे अधमाः । कर्षणाक्रन्दिनं स्वभाग्यैर्मम

- - - - - गोचरमेनं यूय त्यजत त्वर्णम् । अन्यथा यदि न

यूयं त्यजथ तदा - - - - - तद्युष्माक - - -

स्यात् । युष्मानपहरामीत्यर्थः । सम - - - - - ॥

- - - - - सेनापरिवारितस्य

15 - - - - -

- - - - - महाभटेन

व्यधत्त - - - - - ।

* A lacuna covering the rest of this verse and its com.

- - - - -

- - कं वैद्युतदौप्तिदौपैः ॥

राजा - - - - -

गर्जितमिश्रमारान्त्रिक - - - - - ॥

5 - - - विश्याथ सुरालयं तं

सिं - - - - - ।

- - - - -

- - श्रुत्क इव व्यभावि ॥

महाकालायतनं प्रविश्य स वीरस्तामहन् - - - - -

10 - - - - - जन्मभ्राष्ट्रेवाद्रिगुहास्तत्समूहै रोहन्ती प्रतिश्रुत्वा

प्रतिशब्दो यस्य स इव जातः । गर्जितमेव प्रतिशब्द इत्यर्थः ॥

श्रुत्वैव तं मारकसैनिकानां

अंशाय कौश्लेयककर्त्तरौणाम् ।

विहस्तताजायत पार्थिवेन

15 खड्गे प्रकोष्ठेष्वनिपातितेपि ॥

तं सिंहनादं श्रुत्वैव मारकाणां प्रकोष्ठेषु खड्गे अनिपाति-
नेपि सति विहस्तता व्याकुलता खड्गादीनां - - - - स्त-
विषयखड्गप्रहाराभावेपि विहस्तताभूदिति विरोधाभासः ॥

- - - - लोचयामि
 त्वामस्मि कस्मादतिविह्वलोसि ।
 इति ब्रुवाणं सुभ - - - -
 - - - - - यातुधानः ॥

5 त्वं मा संभ्रमीर्भीतो माभूरहं त्वां मोक्ष्या - - - -
 - - - - नं कश्चिन्मानुषमारकः कथितवान् ॥

अरे वद त्वं कतरो व - -
 - - - - - ।

यः श्रीमहाकालनरोपहार-
 10 यज्ञावशिष्टाशननित्यनिष्ठान् ॥

- - - - - ॥*

- - - - या दुष्टं सत्त्वं सिंहादिं मृग - - - -
 - - - - - तेर्दुतिरितिरूपम् ॥

भाव्यं - - - - -

15 - - - - - ।

- - - मस्येव भयं प्रयुंक्ते
 मन्त्रेपि - - - - - ॥

* A lacuna covering com. on this verse and the text and part of the com. of the next verse.

- - - - - तोस्याहेरिव
लक्षणं चूडार - - - - - ॥

- - - लय्यासुरवैरिभिः खा-
तेजश्चयैः स्वैरिव पूर्यमाणम् ।
5 सङ्ग्रामदैरस्मदरोचिरंश-
- - - स्त्रिंशमुवाच देवः ॥

सङ्ग्रामव्यरिणमनैरस्मदो विद्युत्सम्बन्धी रोचिरंशो यत्र तं
खड्गमुत्क्षिप्यैवं चिन्तयित्वा राजावोचत् । अतः संभाव्यते ।
देवैर्निजैस्तेजोराशिभिरिव पूर्यमाणम् । विद्युति विषये तेजो-
10 विषयित्वेन - - - - - ॥

सुदुस्त्यजं यद्यपि नित्यकृत्यं
तथापि युष्मद्गृहमागतोस्मि ।
आतिथ्यहेतो - - - - -
- - - ह्यः शरणागतोऽयम् ॥

15 यद्यपि निष्ठावतां नित्यकृत्यमत्याज्यं तथापि - - - - -
इत्यातिथ्यहेतोर्भवद्भिरयं शरणागतो ममावश्यरक्ष्यस्त्यज्यताम् ॥

इत्युक्त - - - - -
- - - धाक्षोभितयातुधातु ।

यातुं कृतान्तान्तिक्मिद्वकामं
निका - - - - - ॥

- - - - रचः कर्तृ अतिरुचं कृत्वा तमित्यवोचत् ।
 कस्मिन्सत्येवमु - - - - - तुरङ्गतं शिल्पं सृष्टिः ।
 तादृशस्यान्यस्य निर्माणाभावात् । तथाचु - - - - -
 मसमीपं गन्तुमत्यभिलाषुकम् ॥

5 आतिथ्यमभ्यर्थयते - -

- - - - - ।¹

- - - - - वांश्च काल - - - - -
 - - - - - ॥

- - - - चरस्य हस्ता-

10 द्यावत्स कौश्लेयकमा - - - ।

- - - - -

- - - - - मेव ॥

एवं श्रुते सति मानवमारो - - - - - वदेकप्रहारेण
 राजा तमेवेश्वरोपहारमकरोत् । - - - - - स्रविहारेण
 15 इत्याङ्पूर्वस्य दाञ्ज आत्मनेपदविधानात् । आदधातौ - - -
 - - - - - राधानार्थो न तु धारिणार्थः । अत आ इत्यव्ययं
 कृपायं भिन्नपदम् । कृपा - - - - - र्थत्वात् ॥

पलायितैरित्याद्यालोडितेत्यन्तं कुलकम् ॥

* A lacuna covering the rest of this verse and its com.

पंलायितैः पार्श्वचरैर - - -
 - - - - कालरिपोरगारे ।
 स्वजातिभक्ष्ये विलुठत्यवन्यां
 छिन्नानने मत्स्य इवोपहारे ॥

5 भय - - - - सादे सति । तथा स्वजातिर्मनुष्या
 भक्ष्यं यस्य तस्मिन्नत्र - - - - - ॥

- - - - - न
 जीवातुवातैरिव क - - ।

- - - - -

10 - - - - - ॥

अकाण्डे निर्गता ये - - - - - ॥*

- - - - दि राज्येषु निःसृ - - हेतुः इमां
 भूमिं राक्षसरहितां - - - कृते सति अ - - -
 प्रजारक्षार्थं वामदेवमहं प्रजारक्षार्थोऽचोदयम् - - - ॥

15 - - - - - लेन च प्राक्
 चैलोक्यसारेण महीधरेण ।
 चिलोचनोपि चिपुरीं जिघाय
 त्व - - - - - पुरीं जितेयम् ॥

* A lacuna covering the rest of this com. and the text of the next verse.

गरादिरूपभाजा त्रिजगत्प्रधानेन मन्दरपर्वतेन हेतुनेश्व-
- - - णि जितवान् । त्वया पुनर्यत्नं विनेद्यं त्रिपुरी जिता ॥

एतामधिष्ठाय करिष्य - -

- - गरां हस्तगतां धरित्रीम् ।

5 अहं कृपाणे कृतसंनिधाना

कौर्त्तिश्रियोर्मध्यगता - - ॥

एतां त्रिपुरीनगरौमधिष्ठायाधिष्ठानं कृत्वा सर्वां भुवं
जेय्यतस्ते खड्गे संनि - - लक्ष्योर्मध्यगता भविष्यामि ॥

तेज - - - - -

10 - - - - याल - - - ।

- - - पूरदेवीत्यव - - -

- - - - - ॥*

* The rest of this canto, extending to about 15 more verses and com. thereon, is missing

सप्तमः सर्गः ॥

— — — — —
— — — — —
एषेत्यपि शब्दार्थः । कुम्भोदरनामा भवान्या गणस्तं हिमाद्रि-
लता(भवान्या)नां भगिनीनामिव या - - - रूको भवसि ॥

5 अवलम्ब्य मृगाधिराजभावं
व्रततीनामवता वनेभभङ्गम् ।
भय - - - कदाचि-
द्विक्तं वासववारणो रराज ॥

सिंहरूपमभिनीय हिमाद्रिलता - - - चताञ्जया-
10 भयं प्रापित ऐरावणो विवृत कृत्वाक्रन्दितवान् ॥

सदसि ध्वनितेन तेन - - -
- - - व्यकथाप्रसङ्गभङ्गे ।
अशपद् द्विरदास्यशब्दशङ्का-
कुपिता पर्वतराजनन्दनी त्वाम् ॥

15 - - न हरस्य कथाच्छेदे जाते गणपतिवृंहितमिति
शङ्कया कुपिता गौरौ त्वां सभायाम् - - - ॥

* The first ten verses or so with com. seem to be missing.

स्वरसेन यथा तथा वनेस्मि-

न्नसि राजेव समुद्यतो विहन्तुम् ।

परमेश्वरपाददूरवर्ती

व्रज राजेव महीतले भवेति ॥

5 यथा तथानुचितं स्नातन्व्येण राजेव क्रीडितुमस्मिन्वने
यत्नं प्रवृत्तोतो महेश्वरपादादूरवर्ती भूतले राजैव भव ॥

शनकैस्सुहृदा निकुम्भनाम्ना

तवशापावधिमर्थिता भवानी ।

प्रचलत्प्रतिबिम्बिताभ्रमुक्ता

10 द्युनदीव प्रससाद चावदच्च ॥

ततो निकुम्भसंज्ञेन लदीयेन सख्या सविनयं शापावधि-
मर्थिता सती गौरी लोलैरभ्रैर्मुक्ता गङ्गेव प्रससाद च शापा-
वधिं चावदत् ॥

उपयास्यति भूमिपालभावं

15 कलिकाले दशकन्धरातितायौ ।

इति निश्चलनिश्चयो यदासौ

भविता संभविता तदास्यमुक्तिः ॥

कलावपि श्रीरामो राजत्वं प्राप्स्यतीति सनिश्चयः कुम्भोदरो
यदा भविष्यति तदा शापमुक्तिरस्य भविष्यति ॥

गिरिजागिरमौदृशीं निशम्य

व्यमृशस्त्वं न ममास्ति शापशान्तिः ।

न हि कश्चिदयं स्फुरत्युपाधिः

पृथिवीं येन कलावुपैति रामः ॥

5 एवं गौरौवचः श्रुत्वा त्वमेवं विचारमका - - - - ॥*

- - - - - यद्भाषितं तन्नूनं तथैव वामनया
लिप्तं त्वां मत्वा शत्रुहस्तिनो द्रष्टुं न शक्ताः ॥

गणकस्य गिरेति निर्विकल्पो

10 नृपतिर्भूभरधारणानुतापम् ।

उदकण्ठत नीलकण्ठलौला-

वृषलांगूलनभस्वतापनेतुम् ॥

दैवज्ञोक्त्या त्यक्तविकल्पो राजा हरक्रीडावाहपुच्छवातेन
भूभारोद्धनतापं निवारयितुमभ्यलषत् ॥

15 अजयत्पृथिवीभृतस्समस्ता-

न्त षडङ्गेन बलेन सर्वकालम् ।

झटिति स्फटिकाचलं प्रतस्थे

बलमष्टाङ्गमवाप्य योगनिष्ठम् ॥

* A lacuna covering the rest of the com. on this verse and the text and part of the com. of the next.

स षडङ्गेन बलेन सदा राज्ञोजयत् अष्टाङ्ग(यो)गं प्राप्य
स्फटिकाद्रिं प्रस्थितवान् । राज्यादप्यधिकसृष्टो योगेभृदित्यर्थः ।
षड्भ्योष्टानामधिकत्वादिति भावः । पृथिवीभृच्छब्दस्य क्षिष्ट-
त्वादुक्तिमङ्गतिः ॥

5 अथ गूर्जरराजमूर्जितानां
मुकुटालङ्करणं कुमारपालः ।
अधिगम्य सुतासुतं तदीयं
परिरञ्चन्नभवद्यथार्थनामा ॥

तेजस्विनां चूडारत्नं गूर्जरेन्द्रं तदीयं दौहित्रं प्राप्य
10 रत्नकुमारपालस्तथार्थनामाभूत् । कुमारोऽप्राप्तराज्यो राज
पुत्रस्तोमेश्वरस्तस्य पालनान्नाम सार्थकम् । कुमारपालस्त-
दीयो भ्रातृपुत्रः ॥

प्रथमस्सुधवासुतस्तदानीं
परिचर्यां जनकस्य तामकार्षीत् ।
15 प्रतिपाद्यजलाञ्जलिं घृणायै
विदधे यां भृगुनन्दनो जनन्याः ॥

घृणायाम् प्रतिपाद्यो जलाञ्जलिर्यस्यां तां निर्घृणाम् परि-
चर्यां शिरच्छेदात्मिकां - - - रघुरामो मातुः कृतवांस्तान्
परिचर्यां पूजां ज्येष्ठसुधवापुत्रः पितुः कृतवान् । पितुश्शिर-
20 च्छेदमकार्षीदित्यर्थः ॥

न परं विदधे वृथागुणित्वं
 जनकं स्नेहमयं विनाश्य यावत् ।
 स्वयमेव विनश्य गर्हणीयं
 व्यतनोद्दीप इवानुरागगन्धम् ॥

5 स्नेहमयं जनकं केवलं न विनाश्य रन्त - - - - या
 - - - - - रणेन विनाशं मरणं प्राप्य - - -
 नुरागगतं यथा - - - - - ॥*

- - - - यन्तुसादिपत्ति-
 व्यवहारेषु विसारिणा चतुर्धा ।
 10 युधि वीररसेन शुद्धिमन्तं
 न समीपादमुचत्कुमारपालः ॥

रथादिषु चतुर्भिः प्रकारैर्विसरता वीररसेन शुद्धिमन्तं
 तं कुमारपालः स्वसमीपान्नात्यजत् ॥

हनुमानिव शैलतः स शैलं
 15 द्विरदेन्द्राद् द्विरदेन्द्रमुत्पतिष्णुः ।
 छुरिकामपहृता कुञ्जरेन्द्रं
 गमयामास कबन्धतां तयैव ॥

शैलाच्छैलं हनुमान् यथोत्पतिष्णुस्तथा हस्तौन्द्राद्ध-

स्तौन्द्रमारोहन् स कुञ्जरेन्द्रादेव च्चुरिकां हत्वा तथैव
च्चुरिकया कुञ्जरेन्द्रं कबन्धतां प्रापयत् ॥

ज्ञात साहससाहचर्यचर्यः
समयज्ञैः प्रथमोदितप्रभावाम् ।
5 तनयां स सपादलक्षपुण्यै-
रुभयेमे त्रिपुरौपुलं(द)रस्य ॥

साहसानां साहचर्यं चर्या यस्य स दैवज्ञैः कथितप्रभावां
तेजस्य सुतां कर्पूरदेवीं सपादलक्षपुण्यैरूढवान् ॥

इतरेतरचित्तचौर्यचर्या-
10 चतुरत्वेपि निकामनिर्विकारम् ।
परमेश्वरयोस्तयोर्युगं त-
त्सुतरामेकशरीरतामयासीत् ॥

तयोः परमेश्वरयोर्महाराजयोश्शिवयोश्च युगं कर्तुं एक-
शरीरतामैक्यमभेदं चागच्छत् । अन्योन्यचित्तस्य चौर्यचर्या
15 हरणं तत्र जागरूकत्वेपि सति निर्विकारम् ॥

अविभाषितभावभेदलेशो
निजनामादिपदाभिधेयकल्पैः ।
शिशिरौभवदाययौ यशोभिः
परितापं न कदाचिदूह्यतुस्तौ ॥

न विभावितोऽनुमितो भावस्थान्योन्यरागस्य भेदलेशो
 ययोस्तौ तथा सोमेश्वरकर्पूरदेवौति निजनाम्नोरादिपदे सोम-
 कर्पूरशब्दौ तदर्थकत्वेर्यशोभिर्हिमौभवच्चेतसौ तौ तापं न
 जनयामासतुः ॥

5

अथ जातु हृदौव संनिधानं

दहशे स्वप्नविधौ विधातुकामः ।

चि - - - - -

- - - - - पद्मनाभः ॥

हृदये स्थितिं कर्तुकाम इव स्वप्ने - - - - -

10 - - - - - ॥

उदयावसरे हरेरभेद

- - - - - ।

- - - - -

- - - - - ॥

15 - - - - - ' - - - ' - ॥*

- - - - -

- - - - - ।

- - - - -

- - य प्रतिपादयचिकार ॥

* A lacuna covering com. on this verse and part of the next verse.

माश्वर्यचित्तो राजा तत्त्वप्रदयं सृष्टिकर्तुस्सकलकर्मसाक्षिणे
ज्योतिर्विदेवर्णयत् ॥

• स जंगाद यदैक्षत क्षपाग्रे
क्षितिपस्तद्भविता चिरादमोघम् ।
5 यदुषस्यवलोकितां तु देव्या
कलितस्तस्य न कालतोतिपातः ॥

राजा प्रदोषे यदपश्यत्तच्चिरेण सफलं भविष्यति । यत्तु
देव्या प्रातर्दृष्टं तस्य चिरकालत्वं नाकलितम् ॥

उचितामिव वाडवाग्निमैत्रौ
10 मकराङ्गस्थितितः करोति भौमः ।
गगने न ममास्ति कापि शोभे-
त्यधुना कुम्भमिवालसः प्रविष्टः ॥

मकरो राग्निविशेषस्तस्याङ्को मध्यम् मकराङ्गस्य समुद्र
तत्र स्थित्योपपन्नां वाडवाग्निमैत्रौमिव भौमः करोति । दीप्तो
15 वर्त्तत इत्यर्थः । भौमस्य हि मकरराशिरुच्चस्थानम् । आकाशे
मम न कापि शोभेत्यत इवालसश्चक्षुः कुम्भं राग्निविशेषं
घटं च प्रविष्टः । अलसगामित्वादाकाशे शोभाभावः ॥

दनुजारिमिवानुनेतुकामो
दनुजानां गुरुरेति मौनराशिम् ।

अधिरोहति मेषमेष पूषा

तुरगाणामिव खेदशान्तिकामः ॥

दनुजारिं विष्णुं प्रसादयितुकाम इव शुक्रो गीनं राशिं
समुद्रं चैति । तथाश्चानां विश्रमार्थमिवार्कौ मेषं राशिं ऊड-
5 मध्यधिरोहति ॥

विहसन्निव मेषराशिवन्तं

वृषभं याति वृषाङ्गशेखरोपि ।

उपलिप्सरिवोभयस्वभावं

मिथुनं संनिदधाति सोमसूनुः ॥

10 मेषो ऊडस्तङ्गामिनं रविं हसन्निवेन्दुर्वृषं राशिमनङ्गाह-
मपि आयाति । वृषाङ्गशेखरत्वान्तस्य वृषस्थितिरु - - - -
स्थिररूपं प्राप्तुकाम इव बुधो मिथुने संनिहितः । द्विस्वभा - -
- - - - - यो रवौन्दोर्वा स्वभावमुपलब्धुकामोपि ॥

तिमिरा - - - - -

15 - - - - - मभ्युपैति ।

पृथिवीमभवं शिखीति बुद्ध्या

यजमान - - - - - ॥

- - - - - ॥*

* A lacuna covering com. on the verse and text and part of the com. of the next verse.

कुम्भाख्यराशिद्वये निषण्णम् । अन्योपि स्वकार्यमन्येन सन्पादितं
सम्भाव्य स्वगृहे निष - - ति । तुङ्ग इति पाठो नार्घः ।
तयो राशयोस्तथोत्तुङ्गत्वासंभवात् प्रकृतार्थाननुगुणत्वाच्च ॥

5

अ(थ पञ्च)भिरेषदौप्तिमद्भि-

स्तपनाद्यैः कलिकालिकां विहाय ।

ध्रुवमेकपदे कृती बुभूषु-

र्तपपञ्चाग्नि - - - नेहा ॥

ध्रुवमयमनेहकालः पञ्चाग्नितपश्चरति । अत्र हेतुमाह ।

10 कृती बुभूषुः कृतयु - - - मिच्छुः कलिमालिन्यं त्यक्त्वा - - -
भिर्दौप्तिमद्भिरेषैस्सूर्याद्यैर्यश्च कृती कृतकृत्यो भवितु - - -
ति स मलं त्यक्त्वा पञ्चाग्नितपश्चरति ॥

इति शुद्धिमति क्षणेच गर्भे

स्वयमाधत्त हरिः स्वमेव देव्याः ।

15 ' अचिराद्भविता पुरस्तदेषां

क्षितिरुन्मूलितरामराज्यगर्वा ॥

एवं शुद्धेस्मिन्क्षणे देव्या गर्भे विष्णुस्त्वयं स्वमात्मानमध-
त्ताहितवान् । तत्ततो हेतोरेषा भूमिरचिरेण त्यक्तरामभद्र-
राज्यदर्पा पुरो भविष्यति रामराज्यादप्यधिकस्य विभवस्य

26 प्राप्तेः ॥

इति वादिनमा दिनावसानं
 वसनालङ्कारणादिदानवर्षैः ।
 परितः परितोष्य पार्थिवस्तं
 गणकाग्रेसरमुत्सवं चकार ॥

5 एवं वादिनं तं गणकं वस्त्रादिभिस्तमान्य राजा प्रदोषं
 यावदुत्सवमकरोत् ॥

गणितासु गतासु यामिनीषु
 प्रजगल्मे मुखपाण्डिमा स देव्याः ।
 उदरं विशतो हरेरपश्यत्
 10 स्वपतौ नाभिजुषो यमम्बुजस्य ॥

स्वपतौ शयालुः स्वोदरं प्रविशतो विष्णोर्नाभिस्थस्य पद्मस्य
 यं पाण्डिमानमपश्यत् स मुखपाण्डिमाख्यासु रात्रिषु गतासु
 सतीषु संक्रान्त देवैर्यथः ॥

शनकैश्शनकैश्शशाङ्कमुखाः
 15 कृशभावोवयवेषु सार्वभौमः ।
 उदरस्य महार्घता भविष्यत्य-
 तिरिक्तेत्युदपादि चिन्तयेव ॥

उदरस्याधिका महर्घता भविष्यतीति चिन्तयेव कर्पूरदेव्या
 अङ्गेषु शनैश्शनैः कृशत्वमुखण्डितमुत्पन्नम् ॥

अपरेपि महस्विनः पृथिव्यां

व्यवहर्तुं न यथारुचि क्षमन्ते ।

इति गर्भगुणानिवाभ्यधत्ते

क्रमशोऽस्याः प्रतिपद्य मान्द्यमग्निः ॥

5 अन्येपि तेजस्विनो यथारुचि यथाभिप्रायं यथादीप्तिं च
भुवि व्यवहर्तुं न समर्था इत्येतान् गर्भगुणानिव जठराग्निर्मन्दतां
प्राप्याभ्यधात् ॥

अचिराद्भुवनन्दनस्य भोज्या

निखिला भूरिति शृण्वती जनेभ्यः ।

10 यदसेवत मन्दयापि रुच्या

-- मास्वादमिवैक्षत क्षितेस्तत् ॥

रुचिर - - - - - यापि मन्दाग्निरपौत्यर्थः ।

- - - - - मि - - - यादुभुजे तन्नूनं

सात - - - - -

15 - - - - - ती भूमेरास्वादं

मा - - - - ॥

- - - - -

- - - - - ।

उदरेण चिरेण जातमस्या-

20

स्त्रिबलौविप्रतिपत्तिपण्डितेन ॥

य एकमेव बलं बलाख्यमसुरमभिनत्तस्तेन्द्रस्यायुधं वज्रस्तस्य
 साम्यं त्यक्तवता वज्रादपि हृग्नेत्यर्थः । उदरेण जातमिति
 भावे क्तः । तिस्रश्च ताः वल्यस्त्रिवल्यः त्रयाणां बलानां समा-
 हारस्त्रिवली त्रिवलीनां त्रिवल्याश्च विप्रविपत्तौ पराभवे
 5 - - - डितेन एकवलभेदौ यस्तस्य त्रिवलीभेदिना
 मह महदन्तरम् ॥

हरिमध्यरुचिं जयत्यधस्तात्

सति मध्ये करिकुम्भकल्पयोनौः ।

अभवद्रुचिरद्य सास्ति नेति

10 स्तनयोश्श्याममुखत्वमाविगसीत् ॥

हरिसिंहस्तस्य मध्यमुदरं तस्य शोभां हृग्नत्वाज्जयत्युदरे-
 ऽधस्तात्सति हस्तिकवाटसदृशयोरावयोर्या शोभा पूर्वमासीत्सा च
 नास्ति । गर्भेण मध्यस्य स्थौल्यादिति भावः । इतीव स्तनयोश्श्या-
 ममुखत्वं चूचुककार्ष्यं कालमुखत्वं चासीत् । सिंहजये करि-

15 कुम्भरुचिरुचिता ॥

मुखमग्निमुशन्ति यस्य सन्तो

भविता तेन पुनस्तनंधयेन ।

नृपवामदृशस्तु पूर्वमेव

स्तनयोश्श्यामिकया मुखं चुचुम्ब ॥

20 सन्तोग्निं यस्य मुखमुपदिशन्ति तेन विष्णुना पुनः पश्चा-
 त्स्तनपायिना भविष्यते । श्यामिकया तु देव्याः स्तनयोर्मुखं

प्रागेव चुम्बितम् । अग्निः कृष्णवर्त्मा म यत्र प्राप्नोति तत्र
पश्चाच्छामिका भवति अत्र तु विपर्ययः ॥

विनिवेशयति स्म यत्र चास्मात्

कथमप्युत्तिष्ठति स्म पादयुग्मम् ।

5. सुचिरस्य भुवेव भाविवध्वा

प्रतिविन्यासमति प्रणम्यमानम् ॥

सा यत्र च स्थाने पादद्वयमचिपदस्मात्स्थानात्सा पादद्वयं
कष्टेनोदचिपत् । भाविन्या स्नुषया भुवा न्यासे न्यासे प्रणम्य-
मानं कृतप्रणाममिव ॥

10 रविणा शशिनं भृतं कलाभि-

स्सकलैरेव करैरिर्वापिताभिः ।

दधतीं कमलां सहस्रपत्रं

स्वमुखस्योपरि सा ददर्श सुप्ता ॥

सकलैस्सहस्रशृङ्खलैः करैरिर्पिताभिस्सहस्रमंख्याभिः कला-
15 भिर्भू - तं पूरितं चन्द्रमिव महस्रपत्रं पद्मं स्वमुखस्योपरि
धारयन्तीं लक्ष्मीं - - - स्वप्नेपश्यत् ॥

ज्वलदाननलम्बिदन्दशूकं

विहगं जातु ददर्श हेमपक्षम् ।

विगलद्यमुनार्कबिम्बदग्धं

पुरतो मेरुसधौरतामिवाप्तम् ॥

ज्वलति दीप्ते आनने लम्बी दन्दशूकः सर्पा यस्य तं तथा
हेममयपद्मं विहगं गरुडमधौरतामाप्तं पुरोपश्यत् । अत्रोत्प्रे-
क्षते । विगलन्तौ यमुना य - - बिम्बेन दिग्धं सहितं
सुमेरुमिव । गरुडस्थानौयो मेरुः अर्कस्थानौयं मुखम् । - -

5 स्थानौया यमुना ॥

वल्लयीकृत - - - - -

स्थितमात्मानमलक्ष्यत्कदाचित् ।

- - - - -

- - - - - म् ॥

10 सा देवी आत्मानं वल्लयीकृतो भोगः कायो येन तथा-
विधे शेषे एव तल्पे स्थितमपश्यत् । अतः संभाव्यते गुरुर्यो
गर्भभरस्तेन ऊष्मा तापस्तस्य शमायै त्वर्णं चन्द्रमण्डलमिव
प्रविष्टम् ॥

स्वमवैक्षत चन्द्रकान्तशाला-

15 वल्लभीशृङ्गनिषङ्गिणं कदाचित् ।

उपदर्शनवाञ्छयोपनीतं

धवलद्वीपप्रिवोदरस्थितेन ॥

सा जातु स्वात्मानं चन्द्रकान्तमये शालावल्लभीशृङ्गे
निषण्णमारुढमपश्यत् । अतस्संभाव्यते उरस्थितेन हरिणा
20 दर्शनार्थं श्वेतद्वीपमिव आनीतम् ॥

अथ पुष्पशरस्य बन्धुमन्यं
पृथिवीमाधवमभ्युपेक्ष्यतीति ।

उपयोगमपश्यतीव किञ्चित्
स्वगतं गच्छति माधवस्समाप्तिम् ॥

- 5 जनकत्वादुद्दौपकत्वादान्यं लोकोत्तरं कामस्य बान्धवं
विष्णुं भूः प्राप्स्यतीत्यतः स्वात्मानमनुपयुज्यमानं पश्यतीव
माधवे वैशाखे समाप्तिं गते ॥

तमसः प्रशमाय सत्त्वमूर्ते-
रवतारावसरं विविच्चतीषु (?) ।

- 10 कलिबन्धुतयेव बिभ्रतीषु
क्रशिमानं क्रमशस्तमस्विनीषु ॥

- कलिबन्धुभावेन हेतुना तमसः पापस्यान्धकारस्य च
शमनार्थं सत्त्वमूर्तेर्विष्णोरवतारममयं विमृशन्तौष्विव तमस्विनीषु
रात्रिषु क्रशिमानं तुच्छत्वं क्रमेण रात्रिषु धारयन्तीषु । तम-
15 स्विनीष्विति साकूतम् ॥

अचिरादिवसेश्वरस्य वंशः
परमां वृद्धिमवश्यमेष्यतीति ।
दिवसेषु विकस्वगीभवत्सु
समयमानेषु च पुष्कराकरेषु ॥

*

सूर्यवंशो चिराद्दृढिं प्राप्स्यतीत्यत इव दिनेषु वर्धमानेषु
सत्सु पद्मसरस्सु च विकसिषु सत्सु ॥

नरकद्विषि भूभरोज्जिह्वीर्षा-

जुषि सं. मेऽश्वरवल्लभोदरस्थे ।

5

अलसालसगामिनौव शून्यं

जलधिं द्रष्टुमिवास्ममे दिनेशे ॥

दिनेशेऽर्कलसालमं गच्छति मति । अतस्संभाव्यते ।
भूमिभारोद्धरणेच्छाधारिणि हरौ देवीगर्भस्थिते शून्यं
सम्यक् जलधिं द्रष्टुमसमर्थेषु च ॥

10

सलिलेपि शयालुना विमुक्ता

नृपदारोदरगोचरेण निद्रा ।

दिवसेऽप्यनुमन्तुमाविशन्त्या-

मिति तस्याममुमेव जीवलोकम् ॥

समुद्रे उचितनिद्रेणापि नृपदाराणामुदरे गोधरो यस्य
15 तेन समुद्रे निद्रा त्यक्तेति तस्यां निद्रायामर्थाद्विष्णुमेवानु-
मन्तुमसुं जीवलोकं दिनेष्याविशन्त्याम् ॥

निवसत्यपरच पुष्करा - -

- - - पिवत्यधोधिमेषः ।

इति हैमवतीभिरद्भिरर्के

20

तमिवापूरयितुं विशत्युदीचीम् ॥

अन्यत्र विष्णौ वसति सति वडवाग्निरशेषं समुद्रं मा
स्य पिबदित्यत इव हिमाद्रि - - - - पूरयितुमुत्तरदिशं
रवौ प्रविशति सति ॥

मणिदीपपतत्पतङ्गमाला

5 द - - - - वितानुभावैः ।

प्रविवेश पुरः कृतप्रवेशं

शकुनै - - - परि - - ॥

- - तन्तीनां पतङ्गमाला - - - - विभावितो
दृष्टोनुभावैः स्वभावो येषां तैश्शकुनैराश्रित मनोहरं सूतिकावासं
10 देवी प्रविष्टा ॥

ज्येष्ठत्वं चरितार्थतामथ नयद्रामान्तरापेक्षया
ज्येष्ठस्य प्रथयन्परंतपतया ग्रीष्मस्य भीष्मां स्थितौम् ।
द्वादश्यास्तिथिमुख्यतामुपदिशन्भानोः प्रतापोन्नतिं
तन्वन्गोचगुणेर्निजेन नृपतेर्जज्ञे सुतो जन्मना ॥

15 ज्येष्ठे मासि निजेन जन्मनोत्पत्त्यान्यमासेभ्यो ज्येष्ठमासस्य
ज्येष्ठत्वं कृतकृत्यतां चयार्थतां नयन्स्तथा परंतपतया वेरितापेन च
ग्रीष्मस्य भीष्मां स्थितिं कुर्वन्द्वादश्यां जन्मना तस्यास्तिथिषु
प्राधान्यं दिग्गन् गोत्रादेर्भानोः प्रतापोन्नत्यं कुर्वन् सुतो राज्ञोतो
- - - - ज्येष्ठत्वं व्याख्यानं न संगच्छते । ज्येष्ठ इति

20 व्युत्पत्तिषिद्धेः ॥ •

निश्लेषाणां शिवानामुपरि कृतपदः साहचर्याधिकारी
सर्वस्यास्तौर्धजातेस्सकलसुरतरग्रामणौ सोदरश्च ।

बालः कोप्येष राजा भुवमुपगतवानित्यकस्मात्सरस्व-
त्यस्मिन्नुत्पन्नमात्रे सुखमलमकृत व्योममूर्तेर्मृडस्य ॥

- 5 सर्वेषां शिवानां प्रेयसां सुप्रजां चोपरि कृतं पदं च रजः
- - - - येन तथामर्वतीर्थानां साहचर्याधिकारी तुल्यः
पवित्रत्वात् । सर्वेषां कल्पवृक्षप्रधानानां सोदरश्चैष बालः । कोप्य-
द्भुतोपूर्वो राजा चन्द्रश्चेति भुवमवतीर्ण इति सरस्वती व्योमरूपस्य
भगवतो सुखमभूषयत् आकाशाद्वागुच्चरितेत्यर्थः । चन्द्रो
10 ह्येकस्यैव शिवस्य शिरसि स्थितः अयं तु सर्वेषां शिवानाम् ।
चन्द्रो गङ्गाया एव सहचरः अयं तु सर्वस्यास्तौर्धजातेः । स
पारिजातस्यैव सोदरः अयं तु सर्वेषां कल्पवृक्षाणामिति भद्रम्*॥

श्रीश्रीकण्ठचरित्रकाव्यविवृतौ विश्वस्य निश्वस्य च
च्छायाभाजि किरातकाव्यविवृतौ विश्वस्य - - श्रियि ।

- 15 पृथ्वीराजजयाख्यकाव्यविवृतौ संवेशमिच्छाम्यहं
शास्त्रचोदजखेदमेदुरमतिज्योत्स्नाकरो लावणिः ॥
श्रीलोलराजसुतपण्डितभट्टनोन-

राजात्मजो विवरणेन स जोनराजः ।

सर्गं सुखं व्यधित संप्रममत्र पृथ्वी-

- 20 राजाख्यराजविजयाभिधकाव्यराजे ॥

पृथ्वीराजविजयविवरणे सप्तमस्सर्गः ॥

* A marginal note reads—चन्द्रश्चाकाश एव तिष्ठति अयं तु भुवि ।

॥ अष्टमः सर्गः ॥

अथ शब्दगुणं व्योम सत्यमित्यवदन्निव ।

सङ्गीतकप्रसङ्गेन पुरन्दरपुराङ्गनाः ॥ १ ॥

अथाप्सरसो गीतातिशयेनाकाशं शब्दगुणं सत्यमित्यकथ-
यन्निव ॥ १ ॥

5 दिव्यदुन्दुभिर्जीमूत - - - - भाविनौ ।

पुष्पवृष्टि - रोचिष्ठ किञ्जल्कतडिदुज्ज्वला ॥ २ ॥

दिव्यदुन्दुभिरेव जी - - - - नौ तथा
किञ्जल्क एव तडित्तयोज्ज्वला पुष्पवृष्टिरशोभत ॥ २ ॥

पुष्पवर्ष - - - - - ।

10 - - दानौव यान्ति स्म दिङ्मुखानि प्रसन्नताम् ॥ ३ ॥

- - - - - पुष्पवर्षे मिलन्तो ये दिव्यमृङ्गा-
स्तेषां पञ्चवातेन प्रमृष्टानौव दिङ्मुखानि प्रसादं प्रापुः ॥ इती-
त्यन्तं (p. 253) कुलकम् ॥

सनाथां पृथिवीं मत्वा राजपुत्रस्य जन्मना ।

15 रजोपि पस्पृशुस्तस्यास्त्रासादिव न मारुताः ॥ ४ ॥

राजपुत्रेण जातेन सखांसिकां पृथ्वीं सम्भाव्य भयादिव
वायवो रजोपि भूमेर्न पस्पृशुः ॥ ४ ॥

अकाण्डे न प्रवेष्टव्यं प्रजास्विति हविर्भुजा ।
मृत्युर्न्ययम्यतेवार्चिःकराग्रैर्दक्षिणामुखैः ॥ ५ ॥

भवता प्राणिषु प्रवेशोऽसमये न कायं दत्तग्निना दक्षिणा-
गैर्ज्वानाहस्तैर्यमो निषिद्ध इव । यमस्य दक्षिणदिशापतित्वा-
5 ज्ज्वालानां दक्षिणाग्राणां निषेधकत्वमुचितम् ॥ ५ ॥

स्ववंश्यमेलकोत्कर्षं पश्यन्तौ शशिभास्करो ।
यशःप्रतापवैशद्यदीप्तिपात्रीबभूवतुः ॥ ६ ॥

निजकुलजातयोस्संगमेनोत्कर्षं पुत्रजन्मलक्षणं पश्यन्तौ
यशःप्रतापाभ्यामिव वैशद्यकौत्योः पात्रीबभूवतुः ॥ ६ ॥

10 गुणवद्भिर्दृता लक्ष्मोः पद्मैरस्मत्प्रसूतिभिः ।
इति वैमल्यमाजग्मुरव्याजं सलिलाशयाः ॥ ७ ॥

अस्मज्जातैर्गुणिभिः पद्मैश्च श्रीवृतेतौव सरांसि वैमल्यं गुणं
प्रापुः ॥ ७ ॥

विभाव्य स्वामिनः पत्नीं समुत्पन्नजगन्निधिम् ।
15 भूरप्यसूययेवाभूद्गोद्भिदुरशेवधिः ॥ ८ ॥

समुत्पन्नो जगन्निधिर्विष्णुर्यस्यास्तां महिषीं विमृश्य स्यर्धयेव
भूरपि प्रकटीकृतहेमकुम्भाभूत् । हेमकुम्भप्रादुर्भावोक्तिर्बाल-
रक्षणौचित्यादत्यर्थं संगच्छते ॥ ८ ॥

धर्मकर्मक्रियाविघ्नहरे जाते नृपात्मजे ।

प्रसेदे यजमानानां न केषामन्तरात्मना ॥ ९ ॥

यंज्ञादिविघ्नहरे पुत्रे जाते सति सर्वेषां याज्ञिकानां
चित्तेन प्रसादः प्राप्तः । तज्जन्मना चेतः प्रसन्नमभूदात्मनः

5 प्रसन्नत्वादिति भावः ॥ ९ ॥

इति विष्णुमयं मूर्तिभेदं मानुषतां गतम् ।

मत्वेव देवदेवस्याप्यनन्दन्ताष्टमूर्तयः ॥ १० ॥

हरिमवतौर्णं मत्वाष्टमूर्तेरष्टौ मूर्तयस्तुष्यन्निव । इत्थं चित्वा-
दीनां रजोभावादानन्दोत्प्रेक्षणम् ॥ १० ॥

10 नृत्यन्तीनां सूरस्त्रौणां चुब्यद्भिर्हरिदामभिः ।

जेतुं मरुत्तमां प्राज्यां मुक्तावर्ष इवाभवत् ॥ ११ ॥

नृत्यवशाच्छिन्नैर्हरिर्हेतुभिर्मुक्तावर्षं मरुत्तं राजानं जेतुं
जितं कर्तुं मिवाभूत् । अन्तर्भावितण्यर्थोच जयतिः ॥ प्रकान्त-
मित्याद्यष्टभिः [(१) मित्यन्तं दशभिः p. 256] कुलकम् ॥ ११ ॥

15 आहृतैर्योगगङ्गातो वातेन कनकाम्बुजैः ।

नृत्तप्रवृत्तनागारिभ्यष्टपक्षाङ्किता इव ॥ १२ ॥

आकाशगङ्गातो वातेनानौतेसुवर्णपद्मैर्हेतुभिनृत्यद्गुडपत-
त्यक्षभूषिता इव ॥ १२ ॥

स्वनितेन मृदङ्गानामप्सरोग्नाद्ययोनिना ।

लक्ष्मी महो - - - - - गलदैरावता इव ॥ १३ ॥

अप्सरसां नृत्ते जातेन मृदङ्गशब्देन हेतुना श्रीमहोत्सवे
उत्साहेन गर्जनैरावणो यासु पत्युरवतारान्महोत्सवः । स्त्रियो हि
5 भोगलम्पटत्वाद्भर्तारमनेकरूपमिच्छन्ति । ऐरावणस्य गर्जनं
लक्ष्म्या गजवाहनत्वात् ॥ १३ ॥

नृत्यदेववधूवक्त्रगलङ्घर्मांश्चुशीकराः ।

पृथिवौ सुधया मेक्तुं प्रवृष्टेन्दुशता इव ॥ १४ ॥

नृत्यन्तीनामप्सरसां सुखेभ्यो गलन्तो घर्मकणा यासु ताः
10 भूमिममृतेन सेक्तुं वर्षितुं प्रवृत्तानीन्दुशतानि यासु ता इव ॥ १४ ॥

उत्सवालोकनायातब्रह्महंसपरिच्युतैः ॥

पक्षांश्चैर्विगलत्पूर्वराजकीर्तिच्छटा इव ॥ १५ ॥

उत्सवस्य वीक्षणार्थमागतस्य ब्रह्मणो हंसेभ्यः पतितै पक्ष-
कणैर्हेतुभिः पतन्तौ पूर्वराजानां कीर्तिच्छटा याभ्यः तत्कीर्त्य-
15 पेक्षया पूर्वराजकीर्तिरल्पत्वाद्विगलनम् ॥ १५ ॥

ध्वनिभिर्दिव्यशङ्खानामिसंख्यैर्मुखरीकृताः ।

स्वकुल्यैः पाञ्चजन्यस्य गीयमानगुणा इव ॥ १६ ॥

अगणितदिव्यशब्दमुखराः पाञ्चजन्यस्य वंशैर्हरेर्गुणा गीय-
माना यासु ॥ १६ ॥

अनन्तवर्षपृषतैः प्रसरद्भिस्सहस्रधा ।

पटवासकषायाक्षचक्राश्रुकलुषा इव ॥ १७ ॥

मेघादिना वर्षकणैः पतद्भिस्सहस्रसंख्यैः कर्पूरादिचोदक-
लुषितनेचेन्दुबाष्पाविला इव ॥ १७ ॥

5 दास्यत्यावन्दितो भास्वान्कस्मैचिद्यदि वाजिनः ।

तदनूरुगतिः का स्यादिति वाचालचारणः ॥ १८ ॥

स्वकुले हरेरवतारेण हृद्योर्कः कस्मैचिद्यद्यश्चान्दास्यति
तदाऽविद्यमानोरोरुणस्य गतिः केति मुखरचारणः ॥ १८ ॥

प्रगीतरोहिणीवक्तप्रसभारोहणोत्सुकम् ।

10 स्वलाञ्छनमृगं रोद्धुमपि व्यग्रसुधाकरः ॥ १९ ॥

गातुं प्रवृत्ताया रोहिण्या मुखे बलेन रोहणे लुब्धं स्वाङ्क-
मृगं रोद्धुं सुधाकरोपि व्यग्रो यासु ॥ १९ ॥

प्रसृतैर्मृगशीर्षस्य चन्द्रशुद्धान्तसौमनि ।

स्वगीतपरगीताभ्यामानन्दासुभिरुश्विताः ॥ २० ॥

15 चन्द्रावरोधेषु निजगीतेन परगीतेन च निर्गतैर्मृगशीर्षस्य
हर्षबाष्पैस्सिक्ताः ॥ २० ॥

प्रमोदासुप्रवाहेण देवानां क्षालिता इव ।

अतिप्रसन्नतां जग्मर्गलत्कलिमला दिशः ॥ २१ ॥

देवानां हर्षवाप्यस्रोतसा धौता इव दिशो गलन्कलिमलो
याभ्यस्ताः - - - - - मदं प्रापुः ॥ २१ ॥

प्रक्रान्तमेवमष्टाभिर्दिक्पालैः प्रमदोत्सवम् ।
सुरैस्तदौर्यपिण्डस्य नृ - भिर्निर्वाहयत् ॥ २२ ॥

5 एवं लोकपालैरारब्धं पुत्रस्य सम्बन्धिनमुत्सवं तेषां लोक-
पालानां वीर्यस्य पिण्डस्य राशिः पुत्रस्य राजा समापयत् ।
पिण्डस्य चाष्टाङ्गानि - - - - - ॥ २१ ॥

- - - - - प्रादादनर्थिभ्योपि पार्थिवः ।
अशोधयदृणं पित्र्यमिति किं नाम कौतुकम् ॥ २३ ॥

10 अदयं क्वचामराद्यप्ययाचञ्ज्ञोपि राजादात् । पितृणा-
मृणं अशोधयदिति नाश्चर्यम् । पितरो ह्यर्थिनः पितृणां
ऋणशुद्धिरवश्यं कार्या । अयमर्थः ऋणमस्मै मनमतौति
वाक्यात्पुत्रेण ते पितुर्ऋणान्मुक्तिः । पित्रा गृह्यते च ऋणं
पुत्रश्शोधयतीत्यर्थान्तररणितम् ॥ २३ ॥

15 ददाने नृपतौ रत्नचामौकरकदम्बकम् ।
विमुक्तिर्मेत्तिकप्रायैरपि बद्धैरवाप्यत ॥ २४ ॥

राज्ञि रत्नादि ददति बन्धैराभरणैर्हृतैर्हारादिभिर्विमुक्तिः
कण्ठादेरवरोहणं प्राप्तम् । निजकण्ठद्वारा अपि दत्ता इत्यर्थः ।
अपिशब्दात्काराबद्धानां मुक्तिः किमर्थमाख्यायते इत्यर्थापत्ति-

20 रार्थी ॥ २४ ॥

| | | |
|---|----|----|
| Gauṇanara Paddhati Kālasāra, Vol. I, Fasc. 1-7 @ -/10/- each | 4 | 8 |
| Ditto Ācārasāra, Vol. II, Fasc. 1-4 | 3 | 2 |
| Gobhiliya Grihya Sūtra, Vol. I | 3 | 2 |
| Ditto Vol. II, Fasc. 2-3 @ 1/4/- each | 2 | 8 |
| Ditto (Appendix) Gobhila Parisista | 2 | 0 |
| Ditto Grihya Sangraha | 0 | 10 |
| Haralata | 1 | 14 |
| *Institutes of Vishnu (Text), Fasc. 2 @ -/10/- each | 0 | 10 |
| Kāla Viveka, Fasc. 1-7 @ -/10/- each | 4 | 6 |
| Karmapradip, Fasc. 1 | 1 | 4 |
| Kātantra, Fasc. 1-6 @ -/12/- each | 4 | 8 |
| *Katha Sarit Sagara (English), Fasc. 4-14 @ 1/- each | 11 | 0 |
| Kavi Kalpa Lata, Fasc. 1 | 0 | 10 |
| Kavindravacana Samuccayah | 3 | 8 |
| Kiranavali, Fasc. 1-3 @ -/10/- | 1 | 14 |
| Krityaratnakar, Fasc. 1, @ -/10/- | 0 | 10 |
| Kurma Purana, Fasc. 1-9 @ -/10/- each | 5 | 10 |
| *Lalita Vistara, Fasc. 1-3 @ 1/- each | 3 | 0 |
| Madana Pāṇini, Fasc. 1-10 @ -/10/- each | 6 | 14 |
| Mahā-bhāṣya, Vol. I, Fasc. 1-9; Vol. II, Fasc. 1-12; Vol. III, Fasc. 1-10 @ -/10/- each | 19 | 6 |
| IV, Fasc. 1-4 @ 1/4/- each | 5 | 0 |
| Maitra, or Maitra's Grammar, Fasc. 1-2 | 1 | 4 |
| Manutikā Śāstra, Fasc. 1-2 @ -/10/- each | 1 | 14 |
| Mārkaṇḍeya Purana (English), Fasc. 1-9 @ 1/- each | 9 | 0 |
| *Mārkaṇḍeya Purana (Text), Fasc. 4-7 @ -/10/- each | 2 | 8 |
| *Mimamsa Darśana (Text), Fasc. 9, 11-17 @ -/10/- each | 5 | 0 |
| *Mirror of Composition (English), Fasc. 4 | 2 | 0 |
| Mugdhabodha Vyakarana, Vol. I, Fasc. 1-7 @ -/10/- each | 4 | 6 |
| Nirukta (2nd edition), Vol. I, Fasc. 1-2 @ 1/4/- each | 2 | 8 |
| *Nirukta (old edition), Vol. IV, Fasc. 1-2 @ 1/4/- each | 5 | 0 |
| Nityācārapaddhati, Fasc. 1-7 @ -/10/- each | 4 | 6 |
| Nityācārapradipa, Vol. I, Fasc. 1-4 @ -/10/- each | 7 | 8 |
| Nyaya Vartika Tatparya Parisuddhi, Fasc. 1-4 @ -/10/- each | 4 | 6 |
| *Nyayavartika (Text), Fasc. 2-7 @ -/10/- each | 3 | 12 |
| Nyayasarah | 2 | 0 |
| Padumāwati, Fasc. 1-6 @ 2/- each | 12 | 0 |
| *Parācāra Smṛiti, Vol. I, Fasc. 2-3; Vol. II, Fasc. 1-6; Vol. III, Fasc. 1-6 @ -/10/- each | 11 | 14 |
| Parācāra, Institutes of (English), Fasc. 1-2 @ 1/- each | 1 | 0 |
| *Paricista Pārvaṇ (Text), Fasc. 5 @ -/10/- each | 0 | 10 |
| Pāṇinīyāsāstra | 1 | 0 |
| Prabandhacintāmani (English), Fasc. 1-3 @ 1/4/- each | 3 | 12 |
| Prākṛita-Pāṇinīyam, Fasc. 1-7 @ -/10/- each | 4 | 6 |
| Prithviraja Vijaya, Fasc. 1-3 | 1 | 14 |
| Rasarnavam, Fasc. 1-3 | 3 | 12 |
| Ravisiddhanta Manjari, Fasc. 1-2 @ -/10/- each | 0 | 10 |
| *Saddarśana-Samuccaya, Fasc. 1-2 @ -/10/- each | 1 | 4 |
| Sadukti-karna-mṛita, Fasc. 1-2 @ -/10/- each | 1 | 4 |
| Samarācāra Kāha, Fasc. 1-7 @ -/10/- each | 4 | 6 |
| *Samaveda Sanhita, Vol. I, Fasc. 1-2; Vol. 2, Fasc. 2-6; Vol. 3, Fasc. 1-7; Vol. 4, Fasc. 1-8 @ -/10/- each | 21 | 4 |
| *Sankara Vijaya (Text), Fasc. 2 @ -/10/- each | 1 | 4 |
| *Sankhya Aphorisms of Kapila, Fasc. 1-2 | 1 | 0 |
| *Sankhya Pravachana Bhashya, Fasc. 1-2 @ -/10/- each | 0 | 10 |
| Sāṅkhya Sūtra Vṛtti, Fasc. 1-2 @ -/10/- each | 2 | 8 |
| Ditto (English), Fasc. 1-2 @ -/10/- each | 3 | 0 |
| Siva Parinahya, Fasc. 1-3 @ -/10/- each | 1 | 14 |
| Six Buddhist Nyaya Tracts | 0 | 10 |
| Smṛiti Prakasha, Fasc. 1 | 0 | 10 |
| Srāddha Kriyā Kaumudī, Fasc. 1-2 @ -/10/- each | 3 | 12 |
| Srauta Sutra of Latayana (Text), Fasc. 1-2 @ -/10/- each | 5 | 10 |
| Sri Surisarvasvam, Fasc. 1-2 @ -/10/- each | 1 | 14 |
| Sūgruta Samhita (English), Fasc. 1-2 @ -/10/- each | 1 | 0 |
| Suddhi Kaumudī, Fasc. 1-4 @ -/10/- each | 8 | 0 |
| Sundaranandaṁ Kavyam | 4 | 0 |
| *Suryya Siddhanta, Fasc. 2 @ -/10/- each | 4 | 0 |

| | | |
|---|----|----|
| *Tattva Cintamani, Vol. II, Fasc. 7-10; Vol. III, Fasc. 1-2; Vol. IV, Fasc. 1; Vol. V, Fasc. 1-5; Part IV Vol. II, Fasc. 1-12 @ -/10/- each | 14 | 6 |
| Tattva Cintamani Didhiti Prakas, Fasc. 1-6 @ -/10/- each | 3 | 12 |
| Tattva Cintamani Didhiti Vivriti, Vol. I, Fasc. 1-8; Vol. II, Fasc. 1-3; Vol. III, Fasc. 1 @ -/10/- each | 7 | 8 |
| *Tattvarthadhigama Sūtram, Fasc. 2-3 @ -/10/- each | 1 | 4 |
| Tirthacintamani, Fasc. 1-4 @ -/10/- each | 2 | 8 |
| Trikāṇḍa-Mandanam, Fasc. 1-3 @ -/10/- | 1 | 14 |
| Tul'si Satsai, Fasc. 1-5 @ -/10/- | 3 | 2 |
| Upamita-bhava-prapañca-kathā, Fasc. 1-14 @ -/10/- each | 8 | 12 |
| *Uttara Naishadha (Text), Fasc. 6-12 @ -/10/- each | 4 | 6 |
| Uvāsagadāsō (Text and English), Fasc. 1-6 @ 1/- | 6 | 0 |
| Vajjalaggam, Fasc. 1 | 0 | 10 |
| Vallāla Carita, Fasc. 1 @ -/10/- | 0 | 10 |
| *Varaha Purana (Text), Fasc. 2-14 @ -/10/- each | 8 | 2 |
| Varṣa Kriyā Kaumudī, Fasc. 1-6 @ -/10/- | 3 | 12 |
| Vayu Purana (Text), Vol. I, Fasc. 1-6; Vol. II, Fasc. 1-7 @ -/10/- each | 8 | 2 |
| *Vedānta Sūtras (Text), Fasc. 7-13 @ -/10/- each | 4 | 6 |
| Vidhāna Pārijāta, Fasc. 1-8; Vol. II, Fasc. 1-10 @ -/10/- each | 5 | 10 |
| Ditto Vol. II, Fasc. 2-5 @ -/10/- each | 5 | 0 |
| Ditto Vol. III, Fasc. 1 | 0 | 10 |
| Vishvāhitam, Fasc. 1 | 0 | 10 |
| Vivādaratnākara, Fasc. 1-7 @ -/10/- each | 4 | 6 |
| Vrihat Svayambhū Purāna, Fasc. 1-6 @ -/10/- | 3 | 12 |
| *Vrihannaradiya Purana (Text), Fasc. 3-6 @ -/10/- each | 2 | 8 |
| Yogaśāstra, Fasc. 1-6 | 6 | 4 |
| *Yoga Sūtra of Patanjali (Text and English), Fasc. 1-3 (Fasc. 3, Re 1/-, Fasc. 4, Rs. 2/-) | 3 | 0 |

Rajasthan Series.

| | | |
|---|---|---|
| A Descriptive Catalogue of Bardic and Historical Manuscripts | | |
| Sect. i: Prose Chronicles. Part i: Bikaner State, Fasc. 1 | 1 | 0 |
| Sect. i: Prose Chronicles. Part ii: Bikaner State, Fasc. 1 | 1 | 0 |
| Sect. ii: Bardic Poetry. Part i: Bikaner State, Fasc. 1 | 1 | 0 |
| Vacanaikā Rāthōra Ratana Singrājī rā māhesadāsōta rī Khiriyā Jagā rī kahī. Part i: Dīngala Text with Notes and Glossary | 1 | 8 |
| Veli Krisana Rukamani rī Rāthōra rī Prithī Rāja rī kahī. Part i: Dīngala Text with Notes and Glossary | 1 | 8 |
| Bardic and Historical Survey of Rajputana, Chanda rāu Jēta Sī rō | 1 | 8 |

Tibetan Series.

| | | |
|---|----|---|
| Amarakosah, Fasc. 1-2 | 4 | 0 |
| Amartika Kamdhenuh | 1 | 0 |
| Bauddhastotrasangraha, Vol. I | 2 | 0 |
| A Lower Ladakhi version of Kesatsaga, Fasc. 1-4 @ 1/- each | 4 | 0 |
| Nyayabindu (A Bilingual Index) | 1 | 0 |
| Nyayabindu of Dharmakirti, Fasc. 1-2 | 2 | 0 |
| Pag-Sam Shi Tin, Fasc. 1-4 @ 1/- each | 4 | 0 |
| Prajna Pradipah | 1 | 0 |
| Rtogs brjod dpag nkhri Shi (Tib. & Sans Avadāna Kalpalatā) Vol. I, Fasc. 1-13; Vol. II, Fasc. 1-14 @ 1/- each | 24 | 0 |
| Sher-Phyin, Vol. I, Fasc. 1-5; Vol. II, Fasc. 1-3; Vol. III, Fasc. 1-6 @ 1/- each | 14 | 0 |
| Timed-Kun-Den | 1 | 0 |
| Minor Tibetan Texts. The Song of the Eastern Snow Mountain | 1 | 0 |

| | | |
|---|----|---|
| Notices of Sanskrit Manuscripts, Fasc. 1-14 @ 1/- each | 34 | 0 |
| Ditto ditto (Palm-leaf and selected paper MSS.) @ 3/- each | 6 | 0 |
| Nepalese Buddhist Sanskrit Literature, by Dr. R. L. Mitra | 5 | 0 |
| Report on the Search of Sanskrit MSS., 1895-1900, 1901-1905, and 1906-1911 @ -/8/- each | 1 | 8 |
| Catalogue of the Scientific Periodicals in Calcutta Libraries | 5 | 0 |

N.B.—All Cheques, Money Orders, &c. must be made payable to the Treasurer, Asiatic Society, Calcutta.

